मणिभद्र

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

का

वार्षिक मुख—पत्र

चौबीसवां पुष्प

वि०सम्वत् २०३६

सम्पादक मण्डल :

मोतीलाल भड़कतिया
मनोहरमल लूनावत
श्रीमती शान्ति देवी लोढा,
हरिश्चन्द्र मेहता
राकेश कुमार मोहनोत

मुद्रक :
प्रिंटिंग सेन्टर,
चौड़ा रास्ता जयपुर-3

कार्यालय
श्री आत्मानन्द सभा भवन
घी वालों का रास्ता
जयपुर 302003

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

संघ की स्थायी प्रवृत्तियां

- श्री सुमितनाथ जिन मन्दिर • सम्वत् 1784 मे प्रतिस्थापित 255 वर्षीय सर्वाधिक प्राचीन मन्दिर जिसमे आठ सौ वर्ष पुरानी विभिन्न प्राचीन प्रतिमाओं सहित 31 पाषाण प्रतिमायें, पंच परमेष्ठी के चरण व नवपदजी का पाषाण पट्ट, अधिष्ठायक देव परम प्रभावक श्री मणिभद्रजी, श्री गौतम स्वामी, आचार्य विजय हीरसूरीश्वरजी आ श्री विजयानन्दजी सूरीश्वरजी म०) की पाषाण प्रतिमायें शासन देवी (महाकाली देवी) एव अम्बिकादेवी की अति प्राचीन एव भव्य प्रतिमाओ सहित स्वर्ण मण्डित सम्मेद शिखर, शत्रुन्जय, नन्दीश्वर द्वीप, गिरनार, अष्टापद महातीर्थ एव बीशस्थानक के विशाल एव अद्भुत दर्शनीय पट्ट।

- भगवान श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर, वरखेडा तीर्थ जयपुर टोंक रोड पर जयपुर से 30 कि० दूर एव शिवदासपुरा से 2 कि० पर बाई ओर स्थित वरखेडा ग्राम मे यह प्राचीन मन्दिर स्थित है। इसका इतिहास लगभग तीन सौ वर्ष पुराना बताया जाता है। प्रतिवर्ष श्रीसंघ के तत्वावधान मे फाल्गुन माह मे आयोजित वार्षिकोत्सव मे प्रात कालीन सेवा-पूजा, दिन मे पूजा पढाना एव सायंकाल को साधर्मी वात्सल्य का आयोजन श्रीसंघ की तरफ से होता है। जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा अत्यन्त भव्य और दर्शनीय है। तीर्थ स्थल सुरम्य सरोवर के किनारे स्थित होने से रमणिक तो है ही आगन्तुको के लिए शान्त वातावरण एव आल्हादपूर्ण स्थिति का सृजन करता है।

- भगवान श्री शान्तिनाथ स्वामी का मन्दिर चन्दलाई यह मन्दिर भी शिवदासपुरा से 2 कि० दाहिनी ओर चन्दलाई कस्बे मे स्थित है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा सम्वत् 1707 मे होना ज्ञातव्य है।

  मूल गम्भारे का नव निर्माण करवाया गया है और शीघ्र ही पुन प्रतिष्ठा सम्पन्न होगी।

- भगवान श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर, जनता कालोनी, जयपुर इस मन्दिर की स्थापना श्री भागचन्दजी छाजेड द्वारा सन् 1957 मे की गई और सन् 1975 मे यह मन्दिर श्रीसंघ को सुपुर्द किया गया। अगस्त माह के प्रथम सप्ताह मे इसका वार्षिकोत्सव सम्पन्न होता है। यहा पर श्री सीमंधर स्वामी के शिखरबन्द भव्य मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है जिसमे दान दाताओ का आर्थिक सहयोग प्रार्थनीय है।

- श्री जैन कला चित्र दीर्घा भारतवर्ष के प्रमुख तीर्थ स्थानो मे प्रतिष्ठित जिनेश्वर भगवानो एव जिनालयो के भव्य एव अलौकिक चित्र, जैन संस्कृति के अनेक विभिन्न संकलनों का अपूर्व संकलन।

- भगवान महावीर का जीवन परिचय भित्ति चित्रो में स्वर्ण सहित विभिन्न रंगो मे

कलाकार की अनूठी कला का भव्य प्रदर्शन । अल्प पठन एवं दर्शन मात्र से भगवान के जीवन में घटित घटनाओं की पूर्ण जानकारी सहित अत्यन्त कलात्मक भित्ति चित्रों के दर्शन का अलभ्य अवसर ।

श्री आत्मानन्द सभा भवन : विशाल उपाश्रय एवं आराधना स्थल जिसमें शासन प्रभावक विभिन्न आचार्य भगवन्तों, मुनिवृन्दों एवं समाज सेवकों के चित्रो का अद्वितीय सग्रह एवं आराधना का शांत एवं मनोरम स्थल ।

श्री वर्धमान आयम्बिल शाला : परम पूज्य उपाध्याय श्री धर्मसागरजी महाराज की सद्-प्रेरणा से सम्वत् 2012 मे स्थापित आयम्बिल शाला । प्रतिदिन आयम्बिल की समुचित व्यवस्था के साथ उष्ण जल की सदैव पृथक से व्यवस्था ।

आयम्बिल शाला के हाल का पुर्ननिर्माण कराया गया है । स्वयं अथवा परिजनों में से किसी का भी फोटो लगाने का 1111) रु० नखरा । स्मृतियों को स्थायी रखने सहित आयम्बिल शाला में योगदान का दो तरफा लाभ ।

श्री आत्मानन्द जैन धार्मिक पाठशाला : स्व. श्री चौधरी भंवर लाल जी की स्मृति में मंगलचन्द ग्रुप द्वारा सहायतित बच्चों के चरित्र निर्माण एवं धार्मिक शिक्षा की सायंकालीन व्यवस्था जिसमें सुयोग्य प्रशिक्षिका द्वारा प्रशिक्षण की व्यवस्था ।

श्री जैन श्वे० मित्र मण्डल पुस्तकालय एवं वाचनालय : श्रीमान् रतनचन्द जी कोचर के सद् प्रयत्नों से सन् 1930 में स्थापित पुस्तकालय । दैनिक, साप्ताहिक, मासिक जैन-अजैन समाचार पत्रों सहित धार्मिक पुस्तकों का विशाल संग्रह ।

श्री सुमित ज्ञान भण्डार : पं. भगवानदासजी जैन द्वारा प्रदत्त एवं अन्यान्य श्रोतों से प्राप्त हस्तलिखित एवं दुर्लभ अन्य ग्रन्थों का संग्रहालय ।

उद्योगशाला : महिलाओं के लिए सिलाई बुनाई प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था ।

साधर्मी भक्ति : साधर्मी भाई बहिनों को गुप्त रूप से सहायता पहुंचाने का सुलभ साधन । जरूरतमन्द साधर्मी भाई बहिनों के भरण पोषण में सहायक बनने, जीविकोपार्जन में सहयोग देने, शिक्षा एवं चिकित्सा हेतु सहायता देने और लेने का अद्वितीय संगम । साधर्मी भक्ति की कामना रखने वाले भाई बहिनों के लिए इस संस्था के माध्यम से गुप्त दान का अपूर्व क्षेत्र ।

मणिभद्र : इस संस्था का निःशुल्क वार्षिक मुख पत्र जिसमे आचार्य भगवंतों. साधु-साध्वियो, विद्वानों, विचारकों के सारगर्भित एवं पठनीय लेखों सहित संस्था की वार्षिक विभिन्न गतिविधियों का विवरण, संस्था का वार्षिक आय व्यय का विवरण, कलात्मक चित्रों सहित विभिन्न प्रकार की हमेशा संग्रहणीय सामग्री का प्रकाशन ।

निवेदन :—उपरोक्त सभी प्रवृत्तियां एवं गतिविधियां श्री सुमतिनाथ जिनालय, आत्मानन्द सभा भवन, घी वालों का रास्ता, जयपुर में संग्रहित, संकलित एवं संचालित है जिनका अधिक से अधिक उपयोग कर लाभान्वित होने की साग्रह विनती है ।

दानदाताओं का मुक्त हस्त से आर्थिक सहयोग एवं इनके उत्तरोत्तर विकास एवं विस्तार हेतु रचनात्मक सुझाव सदैव सादर आमंत्रित है ।

संघ मन्त्री

मंगल गीत

--डॉ० शोभनाथ पाठक
एम० ए०, पी-एच० डी० (संस्कृत)
एम० ए०, साहित्यरत्न (हिन्दी)
डी० लिट्० (शोधार्थी) भोपाल

मणिभद्र मनुजता की थाती,
सम्बल है श्रेष्ठ विचारों का ।
जिन उपदेशों की कल्पलता,
अतुलित साधन उपकारों का ॥

जैनागम की गरिमा इसमें
परखें पुराण का ज्ञान यहां ।
पांचों व्रत हैं वरदान बना,
सुख का समस्त समवाय जहां ॥

भौतिकता में भटके जन का,
यह अनुपम, अचल, सहारा है ।
अपने अतीत आदर्शों से,
जिसने युग रूप निखारा है ।

श्वेताम्बर-तपागच्छ गरिमा
की गौरव गाथा गायें हम ।
मणिभद्र भव्यता महक उठे,
सद्पथ पुलक अपनाएं हम ॥

मंगल गीत समर्पित है
संसार समन्वय साध लिये ।
उस महावीर का व्रत फैले,
जग हित जिसने उपदेश दिये ।

*

निर्माणाधीन

विहरमान भगवान श्री सीमन्धर स्वामी का जिनालय

जनता कालोनी, जयपुर

आर्थिक योगदान हेतु विनम्र निवेदन

डा० भागचन्दजी छाजेड़ द्वारा पांच भाईयों की कोठी, जनता कालोनी, जयपुर में स्थित अपने प्लाट मे श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी जिनालय की स्थापना की गई थी और सन् 1975 में यह जिनालय श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर को समर्पित किया गया था। इस वर्ष का इस जिनालय का 25 वां वार्षिकोत्सव राजस्थान केसरी परमपूज्य आचार्य श्रीमद्विजयमनोहर-सूरीश्वरजी म सा. की निश्रा में साहोल्लास सम्पन्न हुआ।

यहां पर भव्य एवं विशाल जिनालय बनाने की योजना वर्षों से संघ के विचाराधीन थी। अब विराजित पूज्य आचार्य भगवन्त की सद्प्रेरणा, मार्गदर्शन एवं पावन निश्रा में इसी स्थान पर श्री सीमन्धर स्वामी का शिखरयुक्त मन्दिर बनाने का कार्य श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर के तत्वाधान में प्रारम्भ कर दिया गया है। इस हेतु 15 सदस्यीय उप समिति का गठन किया गया है जिसके संयोजक श्री शांतिकुमार सिंघी मनोनीत किए गये है।

जिनालय के प्रथम चरण की योजना लगभग तीन लाख रुपयों की बनाई गई है। प्रत्येक जैन बन्धुओं का सक्रिय सहयोग एवं आर्थिक अनुदान सादर प्रार्थनीय है। एक मुश्त अधिकतम एवं न्यूनतम आर्थिक योगदान तो सहर्ष एवं साभार स्वीकार होगा ही, साथ ही दानदाताओं की सुविधा के लिए तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य एवं सुविधानुसार ऐसे महान कार्य में भागीदार बन सके, इस हेतु सहायता की निम्नांकित योजना भी घोषित की गई है :

1. पैसे (प्रतिशत) की भागीदारी : न्यूनतम एक पैसे की भागीदारी के तहत प्रथम चरण के निर्माण में जो योगदान करना चाहें उन्हें 3001)रु० का भुगतान करना है। सर्वप्रथम 601) एकमुश्त तथा प्रतिमाह 100) की दर से 24 किश्तों में शेष राशि का भुगतान करना है। समस्त राशि एक साथ भी दी जा सकती है।

1) रु. प्रतिदिन का योगदान : इस योजना में सम्मिलित होने वालों को कुल 1111 रु.) देना है। इसके तहत प्रतिमाह 30) रु. के हिसाव से तीन वर्षों में अपना दायित्व पूर्ण करना है। फिर भी प्रार्थना है कि शीघ्रातिशीघ्र अपने दायित्व को पूर्ण करने का प्रयास करें।

1111) रु. एवं इससे अधिक राशि देने वालों के नाम शिलालेख पर अंकित किए जावेंगे।

समस्त राशि श्री जैन श्वेताम्वर तपागच्छ संघ, जयपुर के खातो में जमा होगी। अतः चैक अथवा बैंक ड्राफ्ट से भेजे जाने वाली राशि :

"श्री जैन श्वेताम्वर तपागच्छ मदिर, जयपुर" के नाम से भेजी जावे।

सभी के हार्दिक एवं उदारमना सहयोग की कामना सहित,

विनीत,

हीराचन्द चौधरी	शान्तिकुमार सिंघी	मोतीलाल भड़कतिया
अध्यक्ष	संयोजक	संघ मन्त्री

मन्दिर व्यवस्था उप समिति

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

प्रकाशकीय

पूर्ववत् श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी के भादवा सुदी 1 को मनाये जाने वाले जन्मोत्सव के दिवस पर "मणिभद्र" का यह 24 वा अंक प्रकाशित करते हुए हार्दिक प्रसन्नता है।

गत वर्ष का चातुर्मास श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर के लिए महत्वपूर्ण एवं सौभाग्यशाली था क्योंकि वर्षों उपरान्त आचार्य भगवन्त का चातुर्मास हुआ था और परमपूज्य श्री 1008 श्रीमद्विजयह्रींकार सूरीश्वरजी म सा की पावन निश्रा मे चातुर्मास सम्पन्न हुआ था। इस बार भी पुन आचार्य भगवन्त का चातुर्मास है और राजस्थान केसरी परमपूज्य आचार्य श्री 1008 श्रीमद्विजय महेन्द्रसूरीश्वरजी म० सा० आदि ठाणा यहा पर विराजमान हैं। इसी वर्ष जनवरी, 82 में नव निर्वाचन के पश्चात् महासमिति ने कार्य भार सम्भाला है।

विराजित परमपूज्य आचार्य भगवन्त की सद्प्रेरणा, मार्गदर्शन एवं निश्रा मे तपागच्छ संघ के अधीन स्थित श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर, जनता कालोनी जयपुर मे नव-जिनालय का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया है जिसके मूलनायक श्री सीमन्धर स्वामी होंगे तथा शिखरयुक्त मन्दिरजी का निर्माण कराया जा रहा है। चन्दनाई ग्राम मे स्थित श्री शातिनाथ स्वामी के मूल गम्भारे का पुनर्निर्माण करा कर सगमरमर की मूल वेदी और गम्भारा बनाया गया है जहाँ पर शीघ्र ही शुभ मुहूर्त मे पुन प्रतिष्ठा कराई जावेगी।

इसी प्रकार यह मणिभद्र का 24वा अंक भी पूर्ण सज-धज के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। इस अंक को भी सुपठनीय और ज्ञानवर्धक बनाने मे आचार्य भगवन्तों, साधु-साध्वियो का पूर्ण सहयोग और आशीर्वाद तो प्राप्त हुआ ही है, साथ ही नवोदित लेखको की रचनायें भी प्रकाशित की जा रही है। कतिपय अजैन लेखको की रचनाए भी इसमे सम्मिलित है जो इस बात की द्योतक हैं कि जैन धर्म और दर्शन के प्रति जैनेतर लोगों की भी कितनी रुचि और श्रद्धा है जो सभी के लिए प्रेरणादायक है।

लेखको की रचनाए मूल रूप मे प्रकाशित की गई हैं, मान्यता उनकी है और सत्या-सत्य का निर्णय पाठकों को करना है, सम्पादक मण्डल तो निमित्त मात्र है। पूर्ण सावधानी रखने के पश्चात् भी ऐसी सामग्री आ गई हो जो किन्हीं की मान्यताओं के विपरीत हो तो उसके लिए सम्पादक मण्डल अग्रिम रूप से क्षमा-प्रार्थी है।

इस अंक के प्रकाशन में जिन-जिन का भी सहयोग प्राप्त हुआ है, नामोल्लेख किए बिना, सम्पादक मण्डल उन सभी के प्रति हार्दिक आभार और कृतज्ञता प्रगट करता है।

पूर्ववत सहयोग की आकांक्षा एवं शुभकामनाओं सहित,

सम्पादक मण्डल
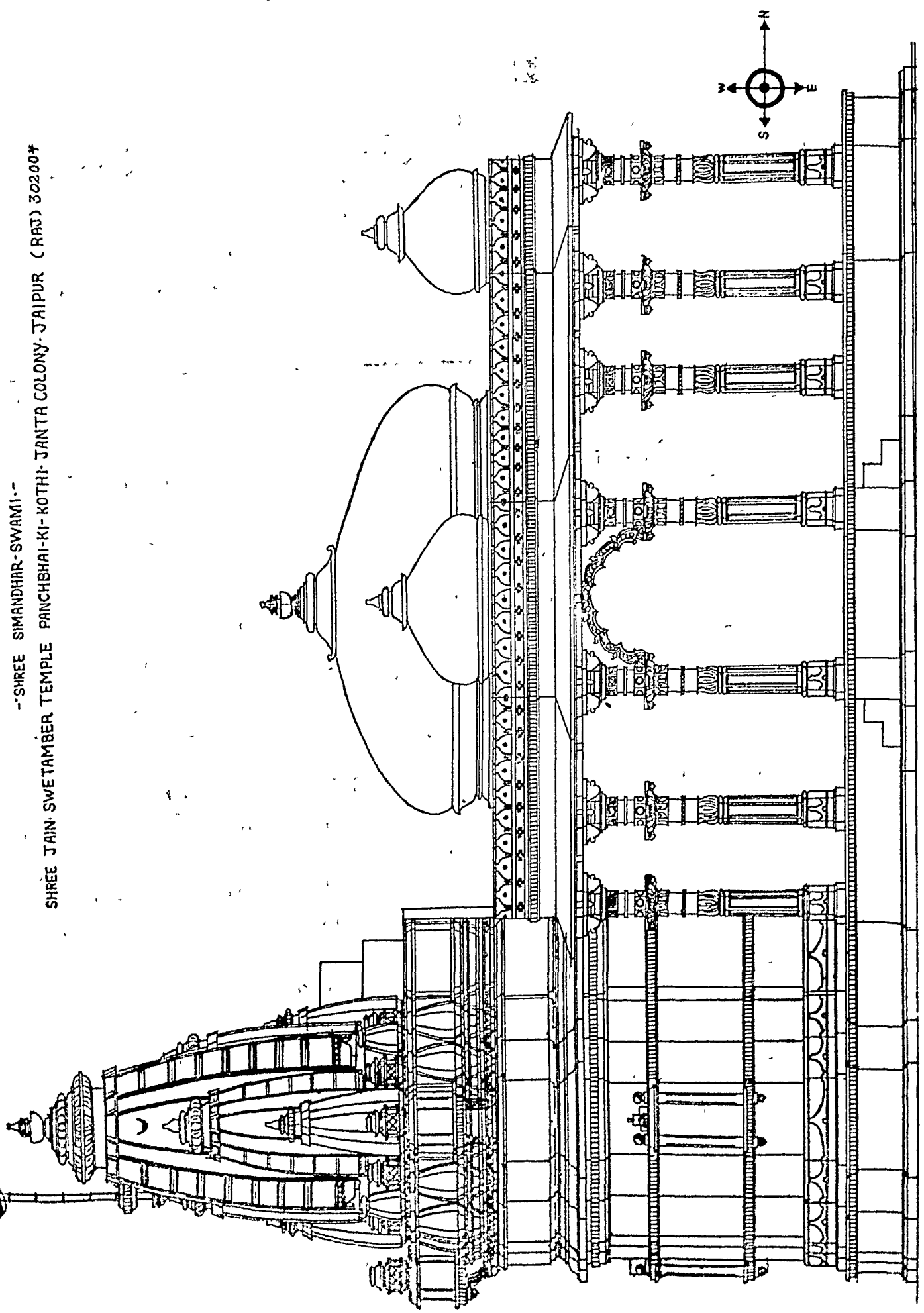
नव-निर्माणाधीन श्री सीमन्धर स्वामी जिनालय का मानचित्र
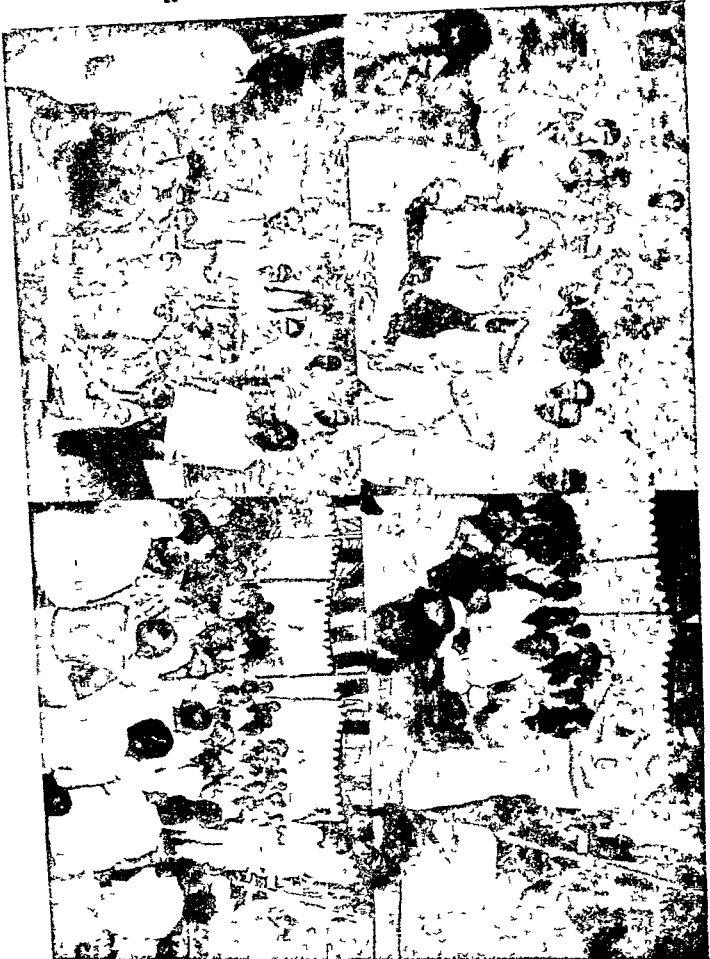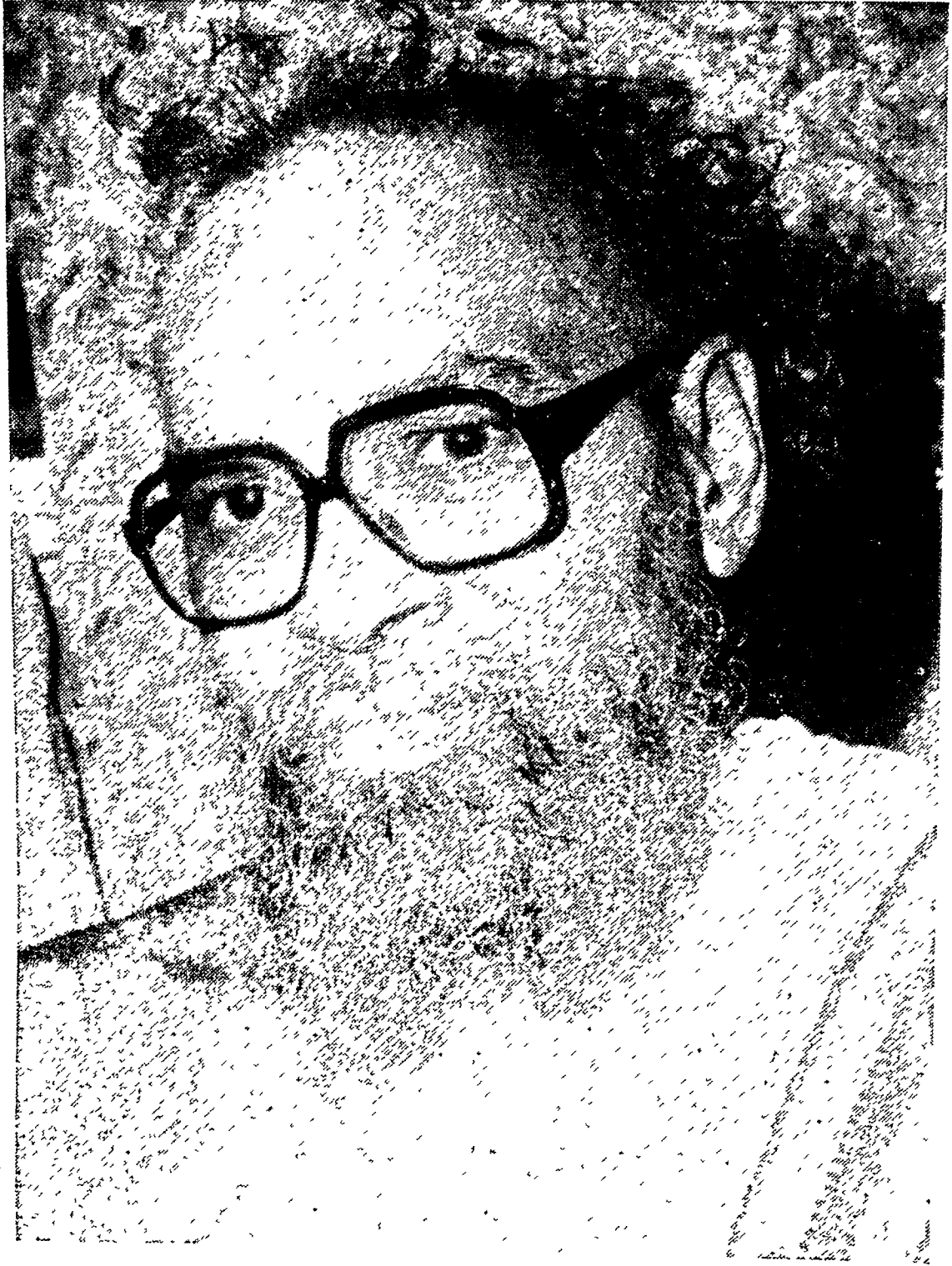
सादर समर्पित

राजस्थान केसरी परम पूज्य आचार्य श्री १००८

श्रीमद् विजय मनोहर सूरीश्वरजी म० सा०

के पावन कर-कमलों में "मणिभद्र" का यह २४ वां पुष्प सादर समर्पित है।

समय के स्वर

☐ राजस्थान केशरी आचार्य श्रीमद् विजय
मनोहरसूरीश्वरजी म० सा०

समय का वहुत वड़ा महत्व है जीवन में।

समय का अर्थ काल से भी सम्बन्धित है और समय को दर्शन अर्थ में भी लिया है। अपन फिलहाल काल से सम्बन्धित समय को सोच रहे हैं। वैसे देखा जाय तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में सबसे सूक्ष्म काल है। समय को चूकने वाले को जीवन में पश्चाताप् का पार नहीं रहता। वर्तमान विश्व ने भी Time is Money समय सम्पत्ति है कह कर समय के महत्व को वेहिचक स्वीकार किया है।

वात विल्कुल सही है कि सभी को समय के महत्व व मूल्य को स्वीकार करना पड़ेगा। यही नहीं पश्चिम के लोगों ने समय की पावन्दी का महत्व भी वढ़ाया है।

समय पर की गई खेती, समय पर किया गया व्यापार, समय पर की गई साधना, समय पर की गई आराधना एव समय पर वोले हुए शब्द फलदायी—वहुफलदायी बनते है एवं शोभास्पद बन कर आदमी को महत्व देते हैं। समय पर सही शब्दों का प्रयोग करना यह भी एक कला है। इस कला को सीखने वाले-जानने वाले कभी असफल नहीं होते। संस्कृत काव्यकारो ने भी समय की महिमा गाते हुए कहा है—

"अवसर पठिता वाणी,
गुणगण रहितापि शोभते पुंसाम्।
वामे प्रयाण समये,
गर्दभ शब्दोऽपि मंगलं तनुते ॥

अवसर (समय) पर वोली गई वाणी गुणगण से रहित होने पर भी पुरुष को शोभा देती है। प्रयाण के समय वाई ओर से आने वाला गधे का शब्द भी मंगल देता है।

समय पर यदि शब्द याद न आये तो विद्वान से विद्वान अधिवक्ता को भी असफल होना पड़ता है। विना समय के शब्द सुन्दर होने पर भी सुनने वाले को वोर वनाते है, कभी-कभी इन्सान को क्रुद्ध भी बनाते है।

वैसे देखा जाय तो महाभारत के युद्ध के मूल में द्रोपदी के शब्द ही थे जिन्होंने सारा महाभारत मचा दिया। द्रोपदी के 'अन्धो के पुत्र' शब्दो से ही प्रतिशोध की भयंकर ज्वालाओ की लपटो मे करोड़ों को भस्मीभूत होना पड़ा।

रामायण की भी यही वात है।

यदि शूर्पणखा रावण के पास सीता के रूप की प्रशंसा नही करती तो शायद रामायण की रचना के वर्तमान रूप मे जमीन-आसमान का फर्क पड़ता।

समय को जीवन बनाना हो तो आप घडी का आदर्श सामने रखिये। घडी का पैण्डुलम जीवन के दो छोर बताता हुआ हमेशा गतिशील रहता है। घडी के सैकिण्ड-मिनट-घण्टे के काटे टिक्टिक करते हुए आगे बढते हुए अपनी क्रियाशीलता का परिचय देकर सम्भवत सभी को ललकारते हैं कि जीवन को गतिशील बनाओ, एक भी समय निष्फल न जाय, प्रत्येक पल को प्रगति से बाध कर सफल करो। शायद घडी के पैंडुलम और काटो ने समय के मूल्य को समझते हुए 'आगे बढे जाओ' का अपना स्वभाव बना लिया है।

समय के साथ-साथ जो जीवन को मधुरता मे बदल सकता है वह हर क्षेत्र मे आगे रह कर यशस्वी बनता है। क्योकि जीवन का क्षेत्र एक ऐसी सग्राम भूमि है जहा भावनाओ का युद्ध हमेशा चलता रहता है। कभी 2 भावनायें किसी न किसी विषय पर जिजीविषा बन कर जीवन मे उलाढाल कर देती है। हिमालय की चोटी से पाताल के गहरे खड्डे मे धकेल देती है। जिसने केवल मधुरता ही स्वभाव बना लिया वह बहुत सी बातो से बच जाता है।

एक बात समझदार को अवश्य सीखनी चाहिये। वह यह है कि जीवन मे अच्छे बुरे समय सभी के आते हैं किन्तु जो बुरे समय मे मदद से, काय से या कम से कम शब्दो से भी यदि किसी को ढाढस बधावे किसी का सहारा बन जाये तो जीवन वरदान सी वह बात बन जाती है। क्योकि समय की चपट मे फसने वाले की बल बुद्धि–शक्ति तेज,-गति आदि सभी कहा, कैसे और कब" के प्रश्न चिह्नो के मकडी के जाले मे अटक जाते है। इसी को लेकर भले-भले भटक जाते हैं, लटक जाते है सिर पटक पटक कर थक जाते हैं फिर भी उनके लिए राह की आशा की किरणें कही भी दिखाई नहीं पडती।

आप सोचिए – आप किसी सस्था के चेयरमैन, मैनेजर अथवा ऐसे किसी महत्वपूर्ण पद पर हैं कि जरूरत मदो को नौकरी दे–दिलवा सकते हैं।

अभी भी दु खद स्थिति यह है कि शिक्षा की दिशाहीनता और शिक्षा श्रम को लेकर शिक्षित बेकारो का अम्बार लगा है। बहुमस्य शिक्षित नौकरी के, अफसरी के चक्कर मे होते हैं। शिक्षा द्वारा श्रम का जो वरदान मिलना चाहिये वह बहुत कम नजर आता है। ऐसी हालत मे आपकी सस्था मे आपके पास कई बेकार आते हैं। अक्सर हालत यह होती है कि स्थान कम और अभ्यार्थी अधिक होते हैं। आपने अपने विवेकानुसार रिक्त स्थानो की पूर्ति कर ली लेकिन उसके बाद बहुत अधिक जरूरतमन्द आपके पास आता है तो वह समय बहुत महत्वपूर्ण होता है।

जैन ज्ञानियो की दृष्टि से कर्म के उदयो मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, महान से महान राजाधिराज भी दु ख पाने और आफतो मे बेसहारा भटकने से बचे नही तो अपन कौन ?

जरूरतमन्द आपके पास आता है उस समय यदि आप उसे वहा से दो टूक शब्द सुनाकर विदा करते हैं तो आनेवाले की आशायें चूर-चूर होने के साथ साथ उसके दिल के भी भावनात्मक दृष्टि से टुकडे 2 हो सकते हैं। दो टूक शब्द जो कहने वाले के लिये उस समय महत्व नही रखते पर सुनने वाले की जिन्दगी बिगडने या सुधरने के साधन बन सकते हैं। आप अपना तरीका, लहजा और रख बदल लो और आने वाले को आप आव आदर दो। उसे कहो कि आप जैसे कर्मठ और विश्वस्त उत्साही युवक की हमे बहुत जरूरत है, पर भाग्य की बात है। आप कुछ लेट हो गए। आप जानते है कि हमारी खाना-पूर्ति होते ही हम बाहर का 'आवश्यकता है" का बोर्ड हटा देते हैं। आपने बोर्ड देखा ही होगा, फिर भी आप आये हैं। आपकी जरूरियात को समझते हुए यदि

कोई गुंजाइश होगी तो आपके जैसे होनहार को हमारी फर्म में रखते हुए मुझे प्रसन्नता होगी परन्तु फिलहाल विवशता है। हां, आप एक काम करिए, अपना एड्रेस मुझे दे जाइये, जैसे ही आवश्यकता होगी मै स्वय आपको याद कर लूंगा।

आप देख लीजिए : दो टूक शब्द और कुछ समय निकाल कर मधुरता से बात, दोनो के बीच कितना अन्तर है। एक आशा को ठुकराता है, दूसरा आशा को बनाकर उसकी जिज्ञासा को जिन्दा रखता है। दोनों बातें एक होने पर भी एक में कडुवाहट की बू आती है, दूसरे में मधुरता की परिमल महकती है। एक में कटु तथ्य तो दूसरे में मधुर तथ्य। आप पता लिख कर देने वाले अभ्यार्थी को एकाग्रता पूर्वक, ध्यान पूर्वक, रस पूर्वक देखिए आप यह देखेंगे कि वह अपना पता बड़े चाव से भाव से लिखकर आपको देता होगा। उसके दिल में आपके प्रति सद्भाव और आदर होगा। समय पर रंग लाने वाली यह कला सीखने योग्य है।

समय के वैज्ञानिक संशोधन भी रसप्रद है। वैज्ञानिको ने सीजियम घड़ी (परमाण्वीय घडी) बनाई है। यह घडी विश्व की सब घड़ियों से अधिक सही समय बताती है। यह घड़ी इतना सही समय बताती है कि सही समय मे 1 सैकिण्ड आगे पीछे होने में इस सीजियम घडी को 600 वर्ष लगेंगे यह एक विद्युत घड़ी है। सीजियम नामक धातु के परमाणुओं के आन्तरिक कम्पनों से नियन्त्रित होती है। ये परमाणु एक सैकिण्ड में ठीक 9192631770 (नौ अरब, उन्नीस करोड, 26 लाख, 31 हजार, 770) वार कम्पन करते हैं और इनकी कम्पन गति में कोई फरक नही आता। यही कारण है कि इन कम्पनों से नियंत्रित यह घड़ी सही समय बताती है।

वैज्ञानिकों के हाथ में इतना सही समय बताने वाली घड़ी आते ही उन्होंने सैकिण्ड की परिभाषा बदलने का निश्चय किया। अब सैकिण्ड संशोधित सौर माध्य दिन का 86400 वा हिस्सा नही पर वह समय है जिसमें सीजियम परमाणु ऊपर अंकित सख्यानुसार कम्पन करता है। यह सैकिण्ड की आधुनिक परिभाषा है। इस तरह निर्धारित सैकिण्ड को परमाण्वीय सैकिण्ड और समय प्रणाली को परमाण्वीय समय कहते है। विश्व के वैज्ञानिको ने सन् 1971 में यह व्यवस्था लागू की थी कि प्रत्येक वर्ष के अन्त में 31 दिसम्बर की मध्य रात्रि को व्यावहारिक खगोलीय सैकिण्ड को परमाण्वीय सैकिण्ड से मिला लिया जाय। इसको लेकर सन् 31 दिसम्बर 1971 की मध्यरात्रि को विश्व की घड़ियों को 1 बटा 10 सैकिण्ड के लिए रोककर परमाण्वीय सैकिण्ड के हिसाब से सही कर लिया गया।

यह तो हुई वैज्ञानिक बात। यह भी अधूरी है—क्योकि वैज्ञानिकों का स्वभाव है कि वे लगातार संशोधनो में लगे रहते है, आगे बढ़ते रहते है। आगे के सशोधनों में इन्हें यदि नया मिले या कुछ प्रगति हो तो वैज्ञानिक अपनी आज की बात को स्वयं कल बदल देते है।

अर्थात् विज्ञान स्थायी न होकर प्रवाही है जबकि विश्व-वत्सल, सर्वतारक, विश्वबन्धु भगवान जिनेश्वर देवो के वचन सर्वथा अपरावर्तनीय एवं शाश्वत होते है। उनमें तीन काल में कभी भी कोई रद्दोबदल नही होता, क्योंकि वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी त्रिकाल ज्ञानी के वचन है। जिनेश्वर परमात्मा की अपेक्षा से वर्तमान सीजियम परमाणवीय समय अति स्थूल समय है। क्योकि जिन प्रवचन के अनुसार असंख्य समयो की एक आवली होती है जब कि सीजियम सैकिण्ड का विभाग अभी सख्या के दायरे में है। जिन प्रवचन फरमाते है कि आखो के पलको को एक वार खोलने वन्द करने मे असंख्य समय जाते हे। समय वह सूक्ष्माति-सूक्ष्म समय है जो कि तीन काल के तीन लोक के सम्पूर्णज्ञान को पाने वाले अतीन्द्रिय महान ज्ञानी (केवल ज्ञानी) की नजरो मे भी जिसके दो विभाग नही हो सकते। समय जहां तक विभागीकरण की

सीमा मे रहेगा वहा तक वह सूक्ष्म न रह कर स्थूल ही रहेगा । आखिरकार स्थूलता हो तो उसमे सूक्ष्मता लाई जा सकती है ।

वर्तमान शासनपति विश्व-वत्सल विश्ववंद्य देवाधिदेव श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी परमात्मा ने अपने सर्व प्रथम शिष्य श्रुतकेवली अप्रमत्त गणधर श्री गौतम स्वामी को भी समय के उत्थान पतन का चमत्कार बताते हुए फरमाया था—

"समय गोयम मा पमायए-खण गोयमा पमायए" हे गौतम एक समय के लिए भी प्रमाद न करो, एक क्षण के लिए भी प्रमाद न करो । आप ही सोचिये, एक समय या एक क्षण का कितना बड़ा महत्त्व है । एक समय में जीवन बदल सकता है, अन्धकार से प्रकाश की तरफ ले जा सकता है । जीवन जो खाली पडा है उसे भर सकता है, आनन्दमय कर सकता है । एक समय की गफलत जीवन को मला मूर्छता, वैर के विष में व्याप्त तम तिमिर में पटकने हेतु सक्षम है । अतः चिंतन मनन और विचारशीलता के लिए यह तकाजा हो जाता है कि ,'प्रत्येक समय को कैसा आकार दिया जाय कि जिसको लेकर हमारे जीवन का आकार बनें ।''

आज इसी क्षण-पल-समय से निर्णय करना अपने लिए अनिवार्य हो गया है कि हम प्रत्येक समय को उजालेंगे, अमृतमय बनायेंगे, मुक्तिमार्ग की सीढी का सोपान बनावेंगे । शाश्वत सुख की आधारशिला है समय का सही आकार ।

सभी भाग्यशाली समय का सही सदुपयोग करके अचल अमर अनन्त आनन्द के अधिकारी बनें, यही मगल कामना ।

जिन पूजन सत्कारयो करणलालस
खल्वाचो देशविरति परिणाम ।

—परम सत्य प्रिय आचार्य श्री
हरिभद्रसूरिजी

निश्चय से देशविरति श्रावक धर्म का आद्य परिणाम कोई भी हो, तो यह श्री जिनेश्वर देव की पूजा तथा सत्कार करने की लालसा है ।

अर्थात् जिसको श्री जिनेश्वर देव की पूजा तथा सत्कार करने की लालसा नहीं है, वह श्रावक भी नहीं है ऐसा जानना ।

श्री अरिहंत परमात्मा का प्रभाव

□ प० पू० आचार्यदेव श्रीमद् विजय कलापूर्ण सूरीश्वर जी मा० सा०

अनंतोपकारी श्रीतीर्थंकर परमात्मा, केवल ज्ञान प्राप्त कर धर्मदेशना के मेघ द्वारा सांसारिक भव्य जीवों के पाप सन्ताप को दूर कर, उनकी कठोर चित्तभूमि को ऐसी रसप्रद एवं फलप्रद बनाते है, कि जिससे उनमें ज्ञानादि सद्गुणों के बीज पल्लवित एवं विकसित होते हुए, क्रमशः पूर्ण अक्षय स्वरूप पाकर फलरूप परिणमित हो जायें।

एक बार बरसा हुआ पुष्करावर्त मेघ भूमि को इतना रसाल और फलद्रुप बना देता है कि 'जिससे इक्कीस हजार वर्ष तक अन्नोत्पादन हो सकता है। ठीक इसी प्रकार पुष्करावर्त के मेघ समान प्रभु की वचन वृष्टि के अपूर्व प्रभाव से इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष तक भव्यात्माओं की हृदय रूप धरती में सब प्रकार के पुण्य और सदगुणों की कल्पलताएं पल्लवित, पुष्पित, और फलित बनती हुई रहती है।

प्रभु की निःसीम करुणा का प्रभाव—

प्रभु की स्तवना करते हुए किसी कवि ने कहा है ' सकलकुशलवल्ली पुष्करावर्तमेघो" अर्थात् सकल पुण्यरूप वेलों को उगाने में प्रभु पुष्करावर्त मेघ समान है।

जगत में जो कोई भी जीवात्मा सुकृत-पुण्यकार्य करने हेतु प्रेरित होता है या उसके हृदय में जो कुछ भी शुभ भाव पैदा होता है। वह सब तीर्थंकर परमात्मा की निःसीम करुणा का ही प्रभाव है।

चतुर्विध संघ रत्नखान—

चतुर्विध संघ रत्न खान है। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु चतुर्विध संघ में से ही बनते है।

संघ की भक्ति में ऐसी अनुपम शक्ति है कि इससे तीर्थंकर नामकर्म का भी निर्माण हो सकता है। श्री संभवनाथ भगवान ने अपने गत तीसरे भव में दुष्काल के समय चतुर्विध संघ की महान् भक्ति करके तीर्थंकर नामकर्म निकाचित किया था। गेहूं में रोटी, पूड़ी, लड्डू और लपसी बनने की शक्ति रही हुई है, विविध व्यजन जिस प्रकार गेहूं से बनते है, इसी प्रकार अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय आदि विविध पदों के अधिष्ठाता संघ में से ही बनते है।

प्रभु भक्ति का प्रभाव—

श्री तीर्थंकर परमात्मा द्वारा बताये गये प्रत्येक अनुष्ठान की आराधना आत्मा को अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय या साधु पद देने में समर्थ होती है। बीस स्थानक पदों में से, किसी भी एक पद की भाव पूर्वक की गई आराधना, तीर्थंकर नामकर्म भेंट करती है।

अरिहंत परमात्मा की सेवा से ज्ञान बढता है, प्रभु की सेवा करने का ज्ञान, आत्मा के लिए हितकर और तारक बनता है ' भक्ति रहित कोरा ज्ञान, भले ही कितना भी मिल जाय, आत्मा में अहंकार उत्पन्न कर, पतन का कारण भूत होता है। पढ़े हुए यानी ज्ञानी भी यदि भक्ति द्वारा

अपनी आत्मा को भगवान में न जोड सकें तो भव में भटकते फिरते हैं।

आत्मा कर्म की परवशता में पामर (कातर) और पतित बना हुआ है। किन्तु, जब यह अरिहन्त की भक्ति में तत्पर होता है तब अरिहन्त के महान् प्रभाव से उसकी कातरता और मलीनता दूर हो जाती है।

उदार करोडपति सेठ का आश्रय लेने वाला सामान्य मनुष्य सुखी और समृद्ध बन जाता है, तो फिर अरिहन्त जैसे लोकोत्तर स्वामी का शरण लेने वाला, उनके अनन्त ज्ञान, सुख और शान्ति का वारिसदार किसलिये नहीं बन सकता ?

सम्बन्ध जोडें तो शक्ति पाएँ —

भगवान के साथ सच्चा सम्बन्ध जुडने के बाद भगवान का ज्ञान तथा आनन्द हममें आने लगता है। भगवान से अलग रहकर, यदि हम उनकी शक्तियों की हममें आने की आशा रखें, तो कैसे फलीभूत हो सकती है ?

दूरी पर स्थित 'पावर-हाउस' से घर की लाइट का कनेक्शन नहीं जोडा जाय, वहा तक घर के कमरे में प्रकाश नहीं उभरता। किन्तु, कनेक्शन जोडने के बाद स्विच दबाने के साथ ही घर प्रकाश से जगमगा जाता है। जहा तक अपने पूर्णज्ञान और आनन्दमय परमात्मा के साथ सम्बन्ध नहीं जोडते वहा तक अज्ञान और दुखमय हालत में जबरदस्ती की जाने वाली ससार की घुमाफिरी करने से रुक नहीं सकते। सच्चिदानन्द प्रभु के साथ सम्बन्ध जुड जाने के बाद तो हम स्वयम् ज्ञान और आनन्द से पूरित होने लगते हैं।

जीवन में पाप तभी होता है, जब कि भगवान हृदय मन्दिर में से चले जाते हैं। भगवान के साथ का सम्बन्ध टूटते ही हृदय मन्दिर में अंधेरा छा जाता है। फिर कार्य और अकार्य का विवेक कैसे रह सकता है ?

भगवान के भक्त बहुत हैं। जब हम भगवान की भक्ति करते हैं, तब सभी भक्त हमारे मित्र बन जाते हैं। भगवान का जो भक्त होता है, उसका भगवान के अन्य भक्तों के साथ अपने आप ही सम्बन्ध बंध जाता है।

भगवान के साथ सम्बन्ध कैसे बंधे ?

भगवान की असीम करुणा के पात्र जगत के सब जीव हैं। इन सब जीवों के प्रति मैत्री और करुणा की भावना भक्त के हृदय में भी आनी चाहिये। जो आत्मायें भगवान की प्रेमी हैं, प्रभु की भक्ति में सदा मस्त रहती हैं, उनके प्रति प्रमोद भाव रखना चाहिए। जो अज्ञानी या भारीकर्मी जीव भगवान के भी निंदक हैं, धर्म के विरोधी व विराधक हैं, गुण तथा गुणी के द्वेषी हैं, उनके प्रति मध्यस्थ भाव रखना चाहिये।

इस तरह मैत्री, प्रमोद और माध्यस्थ भावों द्वारा ससार के समस्त जीवों से यथोचित सम्बन्ध रखा जाए, तभी भगवान के साथ हमारा सच्चा सम्बन्ध बन सकता है और बंधे हुए सम्बन्ध को निभाया जा सकता है।

भगवान का भक्त भगवान से भक्ति सिवाय कुछ भी नहीं मांगे। ऐसी निष्काम भक्ति करने वाला भक्त तुरन्त स्वयम् भगवान बन जाता है।

मूल गुजराती लेख से हिन्दी में अनुवादित। अनुवादक-श्री धनरूपमल नागोरी
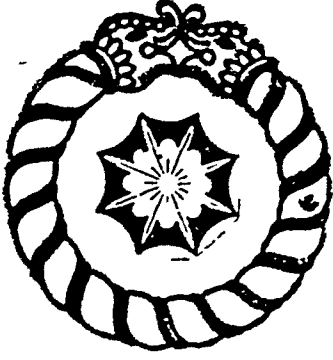
"नमो अरहतान......." "अर्हतो पूजाये"

⊕ श्री शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, सहा. निदे.
राज्य संग्रहालय, बनारसी बाग, लखनऊ

भारतीय कला में मथुरा की कला का अपना ही महत्व है। चूंकि यह शिल्प मथुरा में ही गढ़ा गया इस कारण इसे 'माथुरी शिल्प' भी पुराविद् कहते हैं। माथुरी शिल्प में ई० पू० से ही कला रत्न प्राप्त होने प्रारंभ हो जाते हैं। इस शैली की प्रतिमाएं लालचित्रिदार पत्थर पर तराशी जाती थी। माथुरी शिल्प में धर्म व लोक जीवन दोनों ही मूर्तिकार के प्रिय विषय रहे है। ये प्रतिमाएं ही बलराम, बुद्ध, तीर्थंकर, कनिष्क या वेदिका स्तम्भ पर उकेड़ी यक्षियां किसी को भी ले शिल्पी ने समान रूप से इन निर्जीव पत्थरों को जीवन्त किया ऐसा निर्विवाद सत्य प्रतीत होता है। यह कला मथुरा तक ही सीमित न रही। इस शैली की प्रतिमाएं सारनाथ प्रभृति कलाकारों के लिए आदर्श बन कर सामने आयी। सुप्रसिद्ध माथुरी शिल्प लखनऊ, मथुरा, दिल्ली, बम्बई पटना, प्रयागादि सम्रहालयों के अतिरिक्त पाश्चात्य देशीय ख्याति लब्ध संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रहा है।

इसी माथुरी शिल्प का मथुरा के सुप्रसिद्ध 'ककाली' नामक टीले से उपलब्ध, आयागपट्ट' जिसे' अर्हतो' की पूजा के लिए बनाया गया था, यहां पर वर्णन प्रस्तुत है। यह कला कृति राज्य संग्रहालय लखनऊ [1] की अमूल्य निधि है। यूं तो मथुरा शैली में "आयाग पट्ट" या आर्यक पट्ट श्रद्धा से अर्हतों की पूजा के लिए बनाये जाते थे। इन पर प्रतीक या मध्य में 'अर्हत' प्रतिमाएं भी बनाई जाती थी। ये आयाग पट्ट ई, पू. प्रथम शती से द्वितीय सदी ई. तक बनाये जाते रहे हैं। जैन धर्म के आयागपट्ट अपनी ही विशेषता रखते थे। आयाग पट्टों में प्रस्तुत आयाग पट्ट अधोलिखित विशेषताओं के कारण वर्णनीय है। सर्वप्रथम इस पर स्तूप का अंकन है इसी का दूसरा सम्पूर्ण स्तूप के विलेखन युत मथुरा संग्रहालय का 'क्यू —2' संख्यक आयाग पट्ट पर है। स्तूप पर मेधिव छत्रयष्टिादि का भी अंकन होगा। किन्तु दुर्भाग्य से इसका अंश मात्र ही शेष है। दोनों ओर स्तम्भ हैं जो घट से सजे हैं। इन्हीं स्तम्भों के दोनों ओर वस्त्र भूषणों से सजी प्रत्येक ओर यक्षियां बनी हैं। इनके एक हाथ स्तूप को पकड़े तथा दूसरा कट्यावलंबित है। इनके मध्य में श्रीवत्स व नन्दीपाद या त्रिरत्न जैसे मांगलिक चिह्नों से युत तोरण है। इसके सिरदल व खम्भों को ज्यामितीय व लता अंकनों से सजाया गया है। नीचे के सिरदल के मध्य में माला लटक रही है इसे 'प्रलम्ब माला' कहा जाता है। तोरण के नीचे चार सोपान (सीढ़ियां) हैं। तोरण द्वार

1—जे 255

के दोनों ओर परकोटा, जो वेदिक स्तम्भ, सूची व उष्णीष सहित बनाया गया है। तदुपरान्त दोनो ओर लेख इस प्रकार है—

बाई ओर प्रथम पंक्ति—1 नमोअरहतान फगुयशस
2 नतकस भयाये शिवयशा
3 काये।
दायी ओर—1 आयागपट्टो कारितो
2 अहनत पूजाये

अर्थात् फगयश नर्तक की भार्या (पत्नी) शिव यशा ने इस आयागपट्ट को अहतो की पूजा हेतु बनवाया ऐसा प्रतीत होता है। तत्कालीन समाज मे नर्तको की उपेक्षा नहीं होती थी, क्योंकि रंगमडप में सरस्वती प्रतिमा को स्थापित कराने का भी अभिलेखीय साक्ष्य मथुरा से ही उपलब्ध होता है। प्रस्तुत उत्कीर्ण लेख विशुद्ध संस्कृत भाषा में नहीं है क्योंकि फगुयशस, नतकस खुदा है संस्कृत में 'स्य' होता 'स' नहीं। जबकि 'पूजाये' मे चतुर्थी विभक्ति है। यह "हाईब्रिड संस्कृत" अर्थात् अशुद्ध संस्कृत' में है। इसी के साथ ही इस लेख का लिखावट के अक्षर कुषाण कालीन कम चौड़े व घसीट में नहीं उकेरे गये हैं। ये चौकोर सुडौल व सुस्पष्ट जो पूर्व कुषाण काल के है।[2]

अस्तु, इस स्तूप में कोई अस्थि अवशेष न होकर तीर्थंकरो की धर्म देशना निमित्त निर्मित्त किये जाने वाले 'समवशरण' का विलेखन किया प्रतीत होता है। इसे अहतो की पूजार्थ आज से लगभग बाईस सौ वर्ष पूर्व माथुरी मूर्तिकारों ने रूपायित किया था।

2—स्मिथ, जैन स्तूप एण्ड अदर एंटी क्वटीज

"भीम"

"भीम" का नाम पढ़ते ही हमारे सामने एक स्थूलकाय, शक्तिवान, लड़ायक गदाधारी मानव खड़ा हो जाता है। वो स्थूलकाय था लेकिन उसकी बुद्धि स्थूल नही थी। उसके मन मे दिमाग में सोचते सोचते एक दिन प्रश्न पैदा हुए। वो कहीं उत्तर खोजने जाय? पूछने लगे अपने बड़ोल बन्धु "धर्मराज युधिष्ठिर को।

भीम—धर्म कैसे उत्पन्न होता है?
युधिष्ठिर—सत्य से धर्म उत्पन्न होता है।
भीम—धर्म की प्रगति कैसे होती है?
युधिष्ठर—दया और दान से धर्म की प्रगति होती है।
भीम—धर्म की स्थापना कैसे होती है?
युधिष्ठिर—क्षमा से धर्म स्थापना होती है।
भीम—धर्म का विनाश कैसे होता है?
युधिष्ठिर—क्रोध और लोभ से धर्म का विनाश होता है।

आज ऐसे ही क्रोध मान-माया और लोभ से नष्ट होते हुए हमारे धर्म को सत्य, (सरलता), दया-दान और क्षमा से सारे जग मे प्रसारित करें।

'दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोडिये, जब लग घट मे प्राण॥

स्याद्वाद शैली में मूर्तिपूजा

☐ (पू० पन्यास श्री भद्रंकर विजयजी
विरचित 'प्रतिमापूजन' किताब से)
☐ मुनि श्री भुवन सुन्दर विजयजी म०सा०

स्याद्वादो वर्तते यस्मिन्,
पक्षपातो न विद्यते ।

जहां स्याद्वाद होता है वहाँ पक्षपात नही होता। किसी भी वस्तु-सिद्धान्त-प्ररूपणा के ऊपर एक पहलू दृष्टि से विचार नही करके अनेक दृष्टि से–सब दृष्टि से विचार करना यह स्याद्वाद है। स्याद्वाद यानी सापेक्षता, यह जैन धर्म का सबसे महान सिद्धांत है। सापेक्षता यानी 'ही' का प्रयोग न करके 'भी' का प्रयोग करना, जैसे ज्ञान ही मोक्ष का कारण है ऐसा न कहकर, ज्ञान भी मोक्ष का कारण है ऐसा कहना। यानी जैसे ज्ञान से मोक्ष है वैसे क्रिया से प्रभु भक्ति से, तप से, वैयावच्च आदि अनेक योगों के सम्मिलन से मोक्ष होता है, ऐसा कहना। 'ही' एकान्त वचन है, 'भी' अनेकान्त वचन है। स्याद्वादी को धर्म के सब पहलू में 'भी' का प्रयोग करना उचित है। वरना एकान्त दृष्टिवादी मिथ्यादृष्टि कहलाता है। मिथ्यादृष्टि श्रद्धा से भ्रष्ट हो कर कितने नीचे गिरते हैं इस विषय में जमालि और गोशालक आदि का दृष्टांत शास्त्र प्रसिद्ध है जिन्होने भगवान और भगवान के वचन के खिलाफ बगावत कर के स्वतन्त्रवाद चलाया था और स्व-पर की दुर्गति का आह्वान किया था। सत्य है कि नास्तिक से जितना अनर्थ नही होता उससे विशेष अनर्थ भीतर से नास्तिक परन्तु बाहरी आस्तिक द्वारा होता है।

दूषम पंचम काल में जिनबिंब और जिनागम दो ही प्रमाण भविक जनो के लिए आलंबन रूप शेष रह गये है। प्रतिमा पूजन शास्त्र सम्मत भी है। भगवान के वचनों की (वाणी की) आकृति 'शास्त्र' है तथा केवल ज्ञानादि गुणयुक्त निर्विकार शरीर की आकृति है 'प्रतिभा' जड होते हुए भी शास्त्र-वंदनीय, पूजनीय एवं आदरणीय है, वैसे ही प्रतिमा भी।

मूर्ति और मूर्ति की पूजा सत्य से परिपूर्ण है। सुख शांति समाधान-समर्पण करने का इससे बढकर या इससे तुलना रखने वाला मार्ग आजतक उपलब्ध नहीं हुआ है। मूर्तिपूजन के मार्ग को दिखाने वाले तटस्थ महापुरुषों में जितना ज्ञान, बुद्धि तथा दीर्घ-दर्शिता थी उसका शतांश भी शायद आज के मानव में प्रगट नहीं हुआ होगा। किन्तु जैसे बन्दर को रत्न भी काँच का टुकडा ही दिखता हैं, वैसे ही कच्ची बुद्धि के लोगों को मूर्तिपूजा जैसे उत्तम, कल्याणकारी, शास्त्रसम्मत्त अनुष्ठान में भी हित नही दिखता, अतः वे स्वयं कल्याण के मार्ग से

भ्रष्ट होते हैं, अन्य को भी भ्रष्ट करने मे श्रेय समझते हैं।

"मूर्तिपूजन अपूर्व कल्याण का सार्थक है" ऐसा प्रतिपादन सयमी पुरुषो ने शास्त्र के ठोस प्रमाणो से किया है। आज के स्वच्छन्द कल्पना में खेलने वाले गुर्वाज्ञा निरपेक्ष अल्पज्ञ मनुष्य को गुरुगम के अभाव से या बुद्धि की जडता से मूर्तिपूजा का रहस्य समझ मे न आये तो यह उसकी अपरिपक्व मति का ही अपराध है। हजारो विद्वानो ने मूर्तिपूजा के जिस रहस्य को पाया, उस रहस्य को उससे लाख भाग हीनबुद्धिवालो ने नहीं पाया इतने मात्र से प्रतिमा पूजन का रहस्य या महत्व नष्ट या कम नही हो जाता। परमात्मा की मूर्ति का स्थापन उसका ध्यान व पूजन सभी सयमी पुरुषो द्वारा किया गया हैं इससे सिद्ध होता है कि प्रतिमा पूजन सपूर्ण सत्य है।

कई लोग ऐसा तर्क करते हैं कि—शास्त्रग्रथो से तो ज्ञान मिलता है यह बात प्रत्यक्ष है—स्वानुभव सिद्ध है, किन्तु मूर्ति से ज्ञान होना अनुभव मे नही आया।" इस तर्क का उत्तर यह है कि—"शास्त्र ग्रन्थो से ज्ञान होता है किन्तु किसको? जो ग्रन्थ को समझने में समथ हैं उनको, सबको नही।" "गाय-भैंस-श्वानादि को ग्रन्थ से ज्ञान क्यो नही होता? गाव के अनपढ लोगो को ग्रन्थ से ज्ञान क्यो नही होता? मूर्ति के विषय मे भी ऐसा ही है। जैसे भाषा का ज्ञान प्राप्त कर गुरुगम से धर्मग्रन्थो का अध्ययन करने से ज्ञान प्राप्त होता है, वैसे ही मूर्तिका विधिपूर्वक नियमित अर्चन—पूजन करने वालो को ही मूर्ति से ज्ञान प्राप्त होता है। इस विषय मे गुरु द्रोणाचार्य की प्रतिमा बनाकर ज्ञान प्राप्त करने वाले शिष्य एकलव्य का दृष्टान्त जग प्रसिद्ध है। मानचित्र—नकशा (स्थापना निक्षेप) के द्वारा ही सारे विश्व का ज्ञान दिया जाता हैं यह तो कौन नही जानता?

"मूर्ति ज्ञान के रहस्योद्घाटन मे असमर्थ है" ऐसा मानना वास्तव म मूर्खता है। आगम शास्त्र भी अगर अफ्रीकन हबसी के समक्ष रखे जायें तो उसको निरुपयोगी व काली लकीरें ही दीखेगी इसमे आश्चर्य ही क्या? ज्ञान भण्डार मे कुत्तो को छोड दो तो उसको ज्ञान की महामूल्य किताब मुँह मे पकडकर तोडने फाडने जैसी ही लगे उसमे क्या आश्चर्य? वैसे ही किसी अज्ञानी मनुष्य को शक्रवन्द्य जिनेश्वर देव की प्रतिमा से प्रशान्तता, वीतरागता, माध्यस्थता आदि गुणो का लाभ न होवे तो उसमे प्रतिमा का क्या दोष?

दिमाग की वक्रता, बुद्धि की जडता तथा स्वच्छन्दता एव आपमति या मनमानी छोडने पर तथा तटस्थ जिज्ञासावृत्ति का उदय होने पर वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। अज्ञान का अधेरा और मिथ्यात्व का भ्रमजाल शास्त्र प्रकाश के बिना और गुरुजन के अभाव मे कभी नाश नही हो सकता। जैसे ज्योतिष, मन्त्रशास्त्र, योगशास्त्र, न्यायशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, व्याकरणशास्त्र आदि का अध्ययन करने के लिए और वास्तविक रहस्य पाने के लिए वर्षो तक लगातार बुद्धि और श्रमपूर्वक अभ्यास करना आवश्यक होता है वरना सब ठगविद्या जैसे लगना सम्भव है, वैसे ही मूर्ति और उसके पूजन का रहस्य पाने लिए वर्षों तक लगातार धीरतापूर्वक गीतार्थज्ञानी गुरु की निश्रा मे रहकर बुद्धि की जडता और हृदय की वक्रता को छोड कर विनयादि पूर्वक अभ्यास करना जरूरी है।

परमात्मा के स्वरूप को तथा आगमग्रन्थों के रहस्यो को पाने वाले श्रीमान् भद्रबाहु स्वामी, उमास्वाति महाराज, हरिभद्रसूरिजी, हेमचन्द्राचार्य, शिलांकाचार्यजी, अभयदेवसूरिजी, उपाध्याय यशोविजयजी आदि सैकडो महापुरुषो ने भी प्रतिमा पूजन का समर्थन आगमानुसार किया हैं। निराकार ईश्वरवादियो को प्रतिमा पूजन का रहस्य जिनागमो मे से गुरुगम से खोजना चाहिए। कोई गूढ भाषा में लिखा हुआ ग्रन्थ हमारे ज्ञान से हम न समझ सकें तो समझने के लिए भाषा ज्ञान लेकर

गुरुगम से सीख लेना उचित है, न कि उस ग्रन्थ को जला देना। सिर दुखता है तो दवाई करना उचित है, न कि सिर पटकना। वैसे ही प्रतिमा के सम्बन्ध में भी जानना च हिए।

प्रतिमापूजा के विरोधी वहुधा दो बात से प्रतिमापूजा का निषेध करते है। एक प्रतिमा जड़ है इसीलिये प्रतिमा नही मानना और दूसरा, उसके पूजन में आरम्भ यानी हिंसा होती है, अतः प्रतिमा पूजन त्याज्य है, ऐसा वे कहते है। यह दो वात आगे करके विरोध करने वालों को यह समझना चाहिए कि जो द्रव्य हमारे लिये पूजनीय है, वह द्रव्य चाहे सजीव हो या निर्जीव पूजनीय ही है। दक्षिणावर्त शंख, चिन्तामणिरत्न आदि अजीव-जड होते हुए भी लोक में पूजे जाते है और पूजने वालों को इष्ट की प्राप्ति होती है। जड़ कपड़े के टुकडे का "यह राष्ट्र ध्वज है" ऐसा मानकर करीव सारी दुनियां के लोग आदर करते है, पूजते है, वंदन–सम्मान करते ही है। जैनागमो मे कहा है कि गुरु के जड़-वस्त्र पात्र आदि की पैर से आशातना नहीं करनी चाहिये, वरना प्रायश्चित आता है। मुमुक्षु को दीक्षा के पहिले वन्दनादि नहीं किया जाता और जड़ साधुवेश पहिनते ही वन्दनादि किया जाता है। स्याही तथा कागज से बना शास्त्र जड़ ही है फिर भी उनको वन्दनीय मानते ही है। भगवान का ज्ञान अरूपी है, अरूपी ज्ञान 'अ' कारादि जड़ अक्षर रूप पुद्गल से व्यक्त किया जाता है और अक्षर रूपी आकृति को स्याही से कागज पर लिखे जाने पर वही शास्त्र कहलाता है जो जड़ होते हुए भी वन्दनीय, सम्माननीय माने जाते हैं। वैसे ही केवल ज्ञानादि अरूपी गुणों की अभिव्यक्ति का स्थान भगवान का शरीर है, उसकी आकृति वन्दनीय पूजनीय क्यों न मानी जाय? नाम से ज्यादा महत्व आकृति का है। आकृति में नाम तथा आकार दोनों हैं अतः नाम की अपेक्षा आकृति से ज्यादा बोध होता है। जिसका नाम पूज्य है उसकी आकृति अवश्य पूज्य होगी ही। जिसका भावनिक्षेप पूजनीय है उसके नाम स्थापना एवं द्रव्य ये तीनों निक्षेप अवश्य पूजनीय होते है।

सच बात तो यह है कि निराकार ईश्वर को मानने वाले भी अपने निराकार ईश्वर संबंधी विचारों को साकार शब्द रूप किताब के द्वारा ही समझाते है और स्वगुरु के निराकार गुणों का दर्शन-वन्दन साकार जड़ गुरुमूर्ति-तस्वीर आदि से करते देखे जाते है, फिर भी वे लोग जिनेश्वर देव की प्रतिमा का ही क्यों विरोध करते है, यह वडे आश्चर्य की बात है।

बहुत से मूल आगमों में मूर्तिपूजा का विधान होते हुए भी पुष्प-जलादि से भगवान के पूजन में हिंसा है ऐसा कह कर जो लोग मूर्तिपूजा का विरोध करते है, उनके लिए तो नदी पार करना, धर्म-स्थानक बंधवाने की प्रेरणा देना, व्याख्यान करना, शास्त्र छपवाना, विहार करना, नदी उतरना, सुपात्रदान तथा अनुकम्पा दान की प्रेरणा करना आदि भगवान की आज्ञा होते हुए भी हिंसा यानी अधर्म हो जायेगा। और उनके अनुयायियों के लिये साधर्मिक भक्ति निमित्त चौका चलाना, गुरु को वहेराना, रेलगाड़ी या वस में वैठकर सेंकड़ों मील दूर वैठे गुरु को वन्दन करने जाना, कवूतरों को ज्वार डालना, अपने गुरु की फोटो (तस्वीरें) छप-वाना, गरीवों को दान देना, प्यास से मरती हुयी गाय को जल पिलाना, स्वागत सम्मान हेतु गुरु के सामने जाना आदि सव शुभक्रियाएँ एकान्त पाप ठहरेगी क्योंकि स्वरूप हिंसा तो इन सव क्रियाओं में होनी ही है।

विवेक पूर्वक आशय भेद से हिंसा भी अहिंसा हो जाती है और विवेकहीनता से अहिंसा भी हिंसा में पलट जाती है। आत्मभाव का हनन (घात) जिस क्रिया में होता हो, सो हिंसा है वरना नही। सुपात्रदान, जिनपूजा, विहार आदि क्रियायें सूक्ष्म हिंसात्मकता होते हुए भी आत्मभाव को हानि नहीं किन्तु लाभ पहुंचाने वाली क्रियायें हैं। "मुक्ति

भगवान के सामने बोलने योग्य स्तुतियां

मुनि श्री भुवन सुन्दर विजयजी म०सा०

(१) दशन देव देवस्य, दर्शन पाप नाशनम् ॥
दर्शन स्वर्ग सोपान, दर्शन मोक्ष साधनम् ॥

(२) अद्य मे सफल जन्म, अद्य मे सफला क्रिया ।
अद्य मे सफल गात्र, जिनेन्द्र । तव दर्शनात् ॥

(३) अन्यथा शरण नास्ति, त्वमेव शरण मम ।
तस्मात् कारुण्य भावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर ॥

(४) दर्शनात् दुरित ध्वंसि, वदनात् वाछित प्रद ।
पूजनात् पुरक श्रिणा, जिन साक्षात् सुरद्रुम ॥

(५) परम पुरुष हे त्रिभुवन तारन, जय हो त्रिशला नन्दन,
सही उपसर्गो धीर वीर थई, काढ्यु कर्म निकदन,
धर्मतीर्थनी करी स्थापना, सुख सागर रेलाया,
नित्य प्रभाते करु वदना, भक्ति भाव उभराया ॥

(६) हे प्रभो । आनद दाता ज्ञान हमको दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणो को दूर हमसे कीजिए,
लीजिये हमको शरण मे हम सदाचारी बनें,
ब्रह्मचारी धम रक्षक वीर व्रतधारी बनें ॥

(७) आव्यो शरणे तुमारा, जिनवर । करजो आश पूरी हमारी,
नाव्यो भवपार मारो, तुम विण जगमा सार ले कोण मारी,
गायो जिनराज आजे हरख अधिक थी, प-म आनन्द कारी,
पायो तुम दर्श, नासे भव भय भ्रमणा नाथ । सर्वे अभारी ॥

(८) नहि त्राता, नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतराग समो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥

(९) जेनो प्रबोध प्रसरे जगमां पवित्र,
जेनुं सदा परम मंगल छे चरित्र,
जनुं जपाय जगमां शिवरूप नाम,
ते वीर ने प्रणय थी करिए प्रणांम ॥

(१०) सरस शान्ति सुधारस सागरं, शुचितरं गुणरत्न महागरम् ।
भाविक पंकज बोधि दिवाकरं प्रतिदिनं प्रणमामि जिनेश्वरम् ॥

(११) एम नव पद ध्यावे, परम आनन्द पावे,
नवमें भव शिव जावे, देव नर भव पावे,
ज्ञान विमल गुण गावे, सिद्ध चक्र प्रभावे,
सवि दुरित शमावे, विश्व जयकार पावे ॥

(१२) श्री आदिश्वर शांति नेमि जिनने, श्री पार्श्व वीर प्रभो,
ए पांचे जिनराज आज प्रणमुं, हेते करी हे विभो,
कल्याणे कमला सदैव विमला, वृद्धि पमाडो अति,
एवा गौतम स्वामी लब्धि भरीया, आपो सदा सन्मति ॥

(१३) पशम रस निमग्नं दृष्टि युग्मं प्रसन्नं,
वदन कमलमंक कामिनी संग शून्यं,
करयुगमपि यत्ते शस्त्र संबंध वन्ध्यं,
तदसि जगति देवो वीतरागस्तमेव ॥

(१४) अष्टापदे श्री आदि जिनवर, वीर पावापुरी वरम्,
वासुपूज्य चंपा नयर सिद्धा, नेम रेवागिरिवरम्,
सम्मेत शिखरे वीश जिनवर, मुक्ति पहोंच्या मनहरम्,
चोवीस जिनवर नित्य वन्दु, सकल संघ सुहंकरम् ॥

(१५) मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतम प्रभुः ।
मंगलं स्थूलि भद्राधा, जैनधर्मोस्तु मंगलम् ॥

(१६) अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भण्डार,
श्री गुरु गौतम समरीए, वांछित फल दातार ॥

●

महावीर वाणी का अद्भुत चमत्कार

—मुनि श्री रत्नसेन विजय जी म० सा०

बडा ही गजब का प्रभाव है महावीर वाणी का, जिसने यह वाणी सुनी, उसके कर्ण धन्य बन गये उसका जीवन धन्य बन गया ! शैतान को साधु बनाने वाली है यह महावीर वाणी ! अनचाहे भी महावीर वाणी सुननी पडी कुख्यात लुटेरे रोहिणेय को ! इस महावीर वाणी ने तो अद्भूत चमत्कार का सर्जन कर दिया रोहिणेय के जीवन मे । कुख्यात डाकू मिटकर वीर के चरणो का दास बन गया ।

प्रस्तुत है-अद्भुत और रोमाचक कहानी रोहिणेय चोर की ।

प्रस्तुत है—अद्भुत चमत्कार महावीर वाणी का ।

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान महावीर अपने चरण कमलो से विहार की भूमि को पावन करते हुए राजगृही नगरी के बाह्य उद्यान मे पधारें ! प्रभू महावीर के दर्शन के लिए, उनकी वाणी के अमीपान के लिए चारो ओर से देव वृन्द, मानव वृन्द और पशुवन्द समवसरण की ओर आगे बढ रहे थे ! देवताओ ने भव्य और आकर्षक रत्न स्वर्ण और रजतमय समवसरण की तत्काल रचना कर दी । अष्ठ प्रतिहाय से सुशोभित भगवान महावीर ज्योंहि स्वर्ण पाद पीठ पर विराजमान हुए, त्योंहि देवताओ ने गगनभेदी आवाजो से प्रभू महावीर का जय-जयकार किया । उसी जयध्वनि स्वर मे स्वर मिलाते हुए कई देवताओ ने दु दुभि और अन्य वाद्य-यत्रो का भी नाद किया ।

भगवान महावीर की वाणी वचनातिशय से परिपूर्ण थी, अत एक ही 'अर्द्धमागधी' भाषा में बोलते हुए भी इस वाणी का ऐसा अतिशय था कि सभी देव मानव और पशु अपनी-अपनी भाषा में समझ सकते थे ! सस्कृत भाषी मैथिली को भगवान महावीर की भाषा सस्कृत लगती थी तो महाराष्ट्र निवासी को वही भाषा मराठी लगती थी, तात्पर्य यह है कि सभी को यही अनुभव होता था कि भगवान् महावीर हमारी ही भाषा मे उपदेश दे रहे है । यह तो प्रभाव था भगवान महावीर की वाणी का ।

इसके साथ ही दूसरा आश्चर्य और अतिशय था वैर त्याग का ! समवसरण में प्रवेश के साथ ही सभी प्राणी अपने परस्पर के वैर भाव को भूल जाते थे । और आजन्म मित्र की भाति आजन्म शत्रू प्राणी भी पास पास बैठते थे । सिंह के मु ह का स्पश करते हुए ही पास मे हिरण निश्चितता से बैठ जाता था तो सप और नोलिया भी दोस्त की भाति एक दूसरे को प्यार भरी निगाहो से देखते हुए बैठ जाते थे ।

एक योजन पर्यन्त समवसरण की भूमि में बारह पर्षदाओं का श्रोता-वृन्द शांति से बैठ गया था। चारो ओर सुगन्धी और पवित्र वातावरण था। भगवान महावीर पूर्व दिशा की ओर मुख किए बैठे थे, और अन्य तीन दिशाओं में देवताओं ने भगवान महावीर की ही प्रतिकृतियां स्थापित कर दी थी, वे प्रतिकृतियां इतनी सुन्दर भव्य दिशाओं में बैठे हुए श्रोता वृन्द यही अनुभव कर रहे थे कि भगवान महावीर तो हमारे सामने ही है।

वस। प्रथम पहर के प्रारंभ के साथ अत्यन्त गंभीर मधुर और मालकोश राग में भगवान महावीर की वाणी गंगा के प्रवाह की भांति चल रही थी! जिस प्रकार गंगा नदी का तीक्ष्ण प्रवाह वड़ी चट्टानों और कंदराओं को भी भेद देता है, उसी प्रकार से भगवान महावीर की वाणी भी अनेक भव्यात्माओं के मोह पटल को भेद रही थी। अनेक भव्यात्माओं के हृदय को वैराग्य भाव से रंजित कर रही थी और भगवान महावीर विषय के निरूपण के अनुरूप देवताओं के लक्षण वतला रहे थे।

> अनिमेस नयणा, मणकज्ज साहणा,
> पुप्फ दामं अभिलाणा!
> चतुरंगुलेण भूमि न छवंति,
> सुरा जिणा विति''

समवसरण के दूर से ही एक कुख्यात डाकू रोहिणेय चोर भागा जा रहा था! अत्यंत भयंकर और भीषण उसका चेहरा था! अत्यन्त हृष्ट पुष्ट और वलिष्ट उसकी काया थी! राजगृही के पर्वत की गुफाओं में उसका निवास स्थान था! उसके बाप का नाम था लोहखुर और मां का नाम था रोहिणी। लोहखुर के नाम से राजगृही की प्रजा कांपती थी। गजब का वह लुटेरा था। दिन दहाड़े वह प्रजा को लूटता था और गुफा-कंदराओं में धन के ढेर खड़े कर रहा था।

मृत्यु शैय्या पर पड़े लोहखुर ने एक दिन अपने पुत्र रोहिणेय को बुलाया। आज्ञा पालक बेटा तुरंत हाजिर हो गया।

लोहखुर–बेटा! परलोक प्रयाण की मेरी तैयारी है, तुम सव से अंतिम विदाई लेने की तैयारी में हूं। लूट के अपने धन्धे में तू मेरे से सवाया हो गया, इसके लिए मुझे वड़ा भारी गौरव है। परन्तु मेरी अन्तिम एक इच्छा है? क्या तुम स्वीकार करोगे?

रोहिणेय–पिताजी! पिताजी! यह आप कैसी बात कह रहे है। जीवन पर्यन्त मैने आपकी आज्ञाओं का पालन किया है। पिताजी! आपकी आज्ञा-पालन के लिए मैं मृत्यु को भेटने के लिए तैयार हू। आज्ञा कीजिये, पिताजी!

लोहखुर—तूने जैनों के तीर्थंकर महावीर का नाम सुना होगा?

रोहिणेय—हां पिताजी!

लोहखुर—वस! मेरी अंतिम इच्छा यही है कि तू उस महावीर की वाणी को कभी मत सुनना। यहां तक कि भूलकर भी मत सुनना।

रोहिणेय—पिताजी! मैं आपको विश्वास देता हूं कि आपकी आज्ञा का मैं वरावर पालन करूंगा।

वस! अन्तिम आज्ञा कर लोहखुर चोर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

पिता की आज्ञा के अनुरूप रोहिणेय अव भगवान महावीर से सदैव दूर ही रहता है। भगवान महावीर के आगमन को सुनते ही वह दूर सुदूर भाग जाता है।

दिन दहाड़े उसकी लूट वढ़ती जा रही है। कोई उसे पकड़ नही पाता है। शक्ति इतनी कि

नगर के परकोटे को एक ही छलाग मे कूद जाता हैं, बिजली के चमत्कार की भाति न मालूम वह कहा गायब हो जाता हैं। सभी प्रजा उसकी लूट से पीडित हैं। प्रजाजन श्रेणिक को शिकायत करते हैं।

तत्काल श्रेणिक कोतवालो को आदेश देता हैं। परन्तु कोतवाल भी लाचार हैं, किसी भी परिस्थिति मे उस रोहिणेय को बदी बनाने मे वे समर्थ नही हैं।

अपने इष्ट सुकन के अनुरूप रोहिणेय चोर लूट के लिए कदरा म से सिह की भाति निकल पडा हैं, परन्तु ज्योहि आगे बढता है-भगवान महावीर का समवसरण उसे दिख पडता है। हैरान हो जाता है, अब क्या किया जाय। नगर में जाने का रास्ता वही है और उसी रास्ते से जाय तो प्रतिज्ञा भग हो जाती है—महावीर के वचन को नही सुनने की।

विचार की दौड मे उसे एक तर्क सूझ पडता है और दोनो हाथो से दोनो कानो मे अगुली डालकर वह तेजी से भाग जाता है।

परन्तु अफसोस! बीच ही मार्ग मे एक तीक्ष्ण कटक उसके पैर को विध लेता है। कटक ने उसके गमन को स्थगित कर दिया हैं, एक कदम भी आगे बढने मे वह असमर्थ हो गया है। काटे को निकाले बिना आगे बढना अशक्य प्राय है।

अब वह नीचे बैठता है और एक कान पर से एक हाथ को हटाकर बडी चतुराई से उस काटे को क्षण भर में निकाल देता है।

परन्तु उसी समय देवताओ के स्वरूप को बतलाने वाली वह भगवान महावीर की ध्वनि उसके कान में पहुच जाती है, अनिच्छा से भी वे शब्द उसके कान मे जा गिरते हैं, और याद न करने की इच्छा होने पर भी वे शब्द याद रह जाते हैं, जिसका भावार्थ यह है—

'देवता अनिमेष दृष्टि वाले होते हैं, इच्छा मात्र से कार्य सिद्ध कर देते हैं उनके पुष्प की माला कुम्हलाती नहीं हैं तथा भूमि से चार अगुल अधर रहते हैं-ऐसे व्यक्तियों को देव कहते हैं।"

अत्यन्त पश्चाताप के सागर मे गिर पडता है-रोहिणेय चोर। परतु अब क्या किया जाय कोई उपाय ही नहीं था। और वह आगे बढ जाता है।

रोहिणेय की चोरिया दिन प्रतिदिन बढती ही जा रही थी, प्रजा अत्यन्त दुखी हो चुकी थी। अवसर देखकर श्रेणिक महाराजा अभय मत्री को बुलाते हैं और कहते हैं—

प्रजा को आतकित करने वाले इस चोर को पकडना तो तुम्हारी ही बुद्धि के अधीन है, जाओ इस काम को शीघ्र करो।

तात की आज्ञा को शिरोधाय कर अभय कुमार तत्काल ही सैनिको को आदेश दे देता है और सम्पूर्ण नगर की नाका बदी करा देता है। अभय के इस षडयत्र की गध रोहिणेय तक पहुच न पाई और आखिर वह इस जाल मे फस गया।

रोहिणेय अब, बदी बन गया। अभय ने उसे कैदखाने मे रखा और तात के पास जाकर बोला आपकी आज्ञानुसार चोर को बदी बना दिया है।

तत्काल श्रेणिक बोले—अभय! तुम्हारी तीक्ष्ण बुद्धि ने इस दुष्ट को आखिर पकड ही लिया इसके लिए तुम धयवाद के पात्र हो, अब इस दुष्ट को फासी के तख्ते पर चढा दिया जाय।

अभय—तात! आपकी यह आज्ञा तो राजविरुद्ध है। मैंने तो उसे माया जालसे ठगकर पकडा है परन्तु जब तक वह दोषी साबित न हो जाय, वह

अपनी भूल स्वीकार न करे, तब तक उसको दंड देना अनुचित ही है।

श्रेणिक—तो इस कार्य की जिम्मेदारी भी तुम्हारे ही सिर पर है।

अभय—स्वीकार्य है आपकी आज्ञा !

बस ! तात की आज्ञा को स्वीकार कर अभय एक नये षड़यत्र की रचना करता है।

महल के ऊपरी भाग में देवलोक तुल्य रचना करता है और गंधर्वो के मधुर स्वरों से वातावरण को गुंजित कर देता है।

रोहिणेय को मदिरापान करा दिया जाता है उसी नशे में चकचूर रोहिणेय की वेशभूषा बदल दी जाती है उसे महल के ऊपरीतन भाग मे रची देव-लोक की शैय्या पर सुला दिया जाता है।

धीरे-धीरे रोहिणेय का नशा उतरता है और आसपास के स्वर्गवत् दृश्य को देख चकित हो जाता है। मुकुट और कुण्डलधारी देव देवांगनाएं आकर उसका जयजयकार करती है।

और अचानक एक देवी (नाट्य रूप में नकली देवी) बोलती है - हे स्वामी, नाथ ! मृत्यु लोक का त्याग कर आप देव लोक में पधारे हैं। देव लोक में आपके जन्म से हमें बहुत आनन्द है। आप हम सब देवियों के स्वामी हैं। आप हमारे साथ ऐश आराम कीजिएगा परन्तु देवलोक का एक नियम है कि नवजात देव सर्वप्रथम अपने पूर्व जन्मों के सुकृत व दुष्कृतो को प्रगट करता है, अतः आप भी अपने सुकृत और दुष्कृत सुनाइये।

रोहिणेय यह सुनते ही विस्मित हो जाता है। क्या सचमुच में मेरी मृत्यु हो गई है ? अथवा कुछ माया जाल है ? वह विचार की गहराइयों मे खो जाता है।

तत्काल उसे भगवान महावीर की वह बात याद आती है और वह निर्णय कर लेता है कि जरुर यह अभय का षड़यंत्र लगता है, क्योंकि देव तो अनिमेष दृष्टि वाले होते हैं और ये तो अपनी आंखें टिमटिमा रहे है। अरे ! इनकी मालायें भी तो कुम्हलाई सी लगती है। बस करो। जरूर, जरूर। यह अभय का माया जाल है।

तत्काल रोहिणेय सम्भलकर बोलता है—सुनिये। मेरे सुकृत। मैंने गत जन्म में जिनेश्वर की पूजा की है, सुपात्र में दान दिया है····

सभी मायावी देवियां उसकी बात में सम्मति दर्शाते है, फिर एक देवी -

अच्छा। तो अब अपने दुष्कृत भी सुनाइयें।

रोहिणेय (हंसकर) भला दुष्कृत किये होते तो इस देव लोक में कहाँ से पैदा होता ?

बस। ये शब्द सुनते ही अभय का षडयंत्र असफल हो जाता है और उसके बाद में रोहिणेय को पुनः बन्दी बना दिया जाता है।

अभय—तात। इस कैदी को अब मुक्त कर दीजिए। इसके पास से सत्य बुलवाने मे, मैं भी असफल रहा हूं। इसे तो मौत भी नही जीत पा रही है।

श्रेणिक—अभय। इसको मुक्त करने से क्या फायदा ?

अभय—इसको दंड देना राज विरुद्ध है। इसको मुक्त रखने में ही इसका हित है।

तत्काल रोहिणेय मुक्त हो जाता है। परंतु अब उसे यह मुक्ति बंधन रूप लग रही है।

अब उसे अपनी भूल का गहरा पश्चाताप हो रहा है।

ओह। भूल से भी कान मे गिरे महावीर के शब्दो ने मेरे प्राण बचा दिये। पिताजी ने मेरे साथ घोर अन्याय किया हैं, उन्होने मुझे धोखा दिया है।

बस। अब तो मैं करुणावत महावीर की शरण स्वीकार करता हू।

इतना विचार कर शीघ्र ही भगवान महावीर के चरणो में जा गिरा और अपने दुष्कृतो की माफी मागने लगा।

अभय को बुलाकर चोरा हुआ समस्त धन बता देता है और अभय भी वह धन अपने अपने मालिको को लौटा देता है।

रोहिणेय अब जगतपूज्य भगवान् महावीर का दासत्व स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है और भगवान महावीर भी अत्यत मधुर स्वर और वात्सल्य से उसे योग्य मार्ग दर्शन देते हैं।

रोहिणेय विचारता है—जिस विश्व पूज्य भगवान महावीर ने मेरे द्रव्य प्राणो का रक्षण किया है वे ही मेरे भाव प्राणो के रक्षक बन सकते हैं। उन्ही के चरणो मे जीवन समर्पण कर मैं अपनी आत्मा को धन्यतम बना सकता हू।

और अन्त मे रोहिणेय दीक्षित बन जाता है। भगवान महावीर के शिष्यत्व को स्वीकार कर लेता है और अपना आत्म कल्याण साध लेता है।

कैसा यह अद्भूत चमत्कार है भगवान महावीर की वाणी का। चोर को महा सत बना दिया। द्रव्य (धन) चोर को भाव (आत्म-गुणो) का स्वामी बना दिया।

अनत ज्ञानी त्रिलोकनाथ भगवान महावीर की वाणी का अमीपान कर हम भी अपनी आत्मा को निर्मल बनाने का प्रयत्न करें।

इच्चेअ छज्जीवणिय, सम्मदिट्ठि सया जए।
दुल्लह लहित्तु सामण्ण, कम्मुणा न विराहिज्जासि त्तिबेमि॥

—श्री दशवैकालिक सूत्रम

सम्यग् दृष्टि और सदा यतना वाले साधु–साध्वी दुर्लभ साधुता को प्राप्त करके इस तरह छह जीव निकाय को अकुशल मन–वचन–काया से या प्रमाद से हणे नहीं ऐसा मैं (महावीर स्वामी) कहता हूँ।

आचार्य कालक-कथा की लघु पुनरावृत्ति

(जैन इतिहास का एक महान ग्रंथ)

(भावदेवसूरि राससार)

☐ श्री अगरचंद नाहटा

श्वे० जैन समाज में आचार्य कालक की कथा बहुत प्रसिद्ध है। इस कथा को लेकर प्राकृत संस्कृत और लोक भाषा में गद्य पद्यात्मक पचासो रचानाएं की गई है और उनके दो संग्रह-ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। श्री सारा भाई नवाब ने श्री कालक कथा संग्रह-ग्रन्थ सम्वत् 2005 में प्रकाशित किया था, जिसमें अलग-अलग समय और अलग-अलग विद्वानों द्वारा रचित तीस रचनाओं का संग्रह किया गया था और साथ में इस कथा सम्बन्धी बहुत से चित्र भी दिये गये थे। जैन साहित्य के विदेशी विद्वान नोरमन ब्राऊन ने वाशिगटन से सन् 1933 में प्रकाशित किया था। जिसके चित्र बहुत ही महत्वपूर्ण थे और 116 पृष्ठों में अंग्रेजी में प्रकाश डाला गया था। लाहौर के स्वर्गीय बनारसी दास जैन ने 'कालक कथा संग्रह' ग्रन्थ मुद्रित कराया था, पर उसके बाद लाहौर पाकिस्तान में चला गया, इसलिए वह प्रकाशित नहीं हो सका। वैसे और भी कई सस्करण निकल चुके हैं।

एक ही नाम के चार कालिकाचार्य हो गये है, अतः उतनी घटनाएं मिल जुल गयी हैं। उनका ऐतिहासिक पृथक–करण और समय निर्णय पन्यास कल्याण विजयजी ने अपने निवन्ध में बहुत अच्छी तरह कर दिया है। इससे सबसे पहले कालिकाचार्य कौन हुये उसके बाद कब कब कौन हुये उनसे सम्बन्वित घटनाएं कौनसी है, स्पष्ट हो गया है।

विक्रम संवत् के प्रवर्तक सुप्रसिद्ध मालव नरेश विक्रमादित्य के अस्तित्व और समय के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद रहा है। उसमें कालक कथा ने एक नई और महत्वपूर्ण दिशा प्रकाशित की। इससे कालक-कथा का महत्व बहुत बढ़ गया।

उज्जैन में जब आचार्य कालक विराज रहे थे तो उनकी सती साध्वी और महान् सुन्दरी बहिन सरस्वती पर वहां के गर्दमिल्ल शासक ने मोहित होकर उसे राजमहलों में मंगवाली थी। तब आचार्य कालक और जैन सघ ने उसका बहुत विरोध किया। राजा को खूब समझाया। पर वह नहीं माना, तो अन्त में कालिकाचार्य को विदेश जाकर वहा से शाही राजाओं को संगठित करके उज्जैन पर आक्रमण कराया और राजा की शान ठिकाने लगा दी। इस तरह सरस्वती-साध्वी का पुनरोद्धार किया। अन्याय का प्रतिकार इतने सबल ढंग से करके उन्होंने जैन शासन के महत्व की रक्षा की और गौरव बढ़ाया। इसी प्रसंग की पुनरावृत्ति वट गच्छ के आचार्य भाव देवसूरि को 16वी शताब्दी में परिस्थितिवश करनी पड़ी। भटनेर के शासक को जबरदस्त शिक्षा देनी पड़ी। उसका ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रस्तुत लेख में प्रकाशित किया जा रहा है।

श्वे० जैन समाज में आचार्य कालक की कथा बहुत प्रसिद्ध है ? इस कथा को लेकर प्राकृत-संस्कृत और लोकभाषा मे गद्य पद्यात्मक पचासो रचनायें की गयी हैं और उनके दो सग्रह-ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं । श्री सारा भाई नवाब ने श्री कालक कथा सग्रह ग्रन्थ सवन् 2005 मे प्रकाशित किया था, जिसमे अलग अलग समय और अलग विद्वानो के रचित, तीस रचनाओ का सग्रह किया गया था और साथ मे इस कथा सम्बन्धी बहुत से चित्र भी दिये गए थे । जैन साहित्य के विदेशी विद्वान नोरमन ब्राऊन ने वाशिंगटन से सन् 1933 मे प्रकाशित किया था जिसके चित्र बहुत ही महत्वपूर्ण थे और 166 पृष्ठों मे अग्रेजी में प्रकाश डाला गया था । लाहोर के स्वर्गीय वनारसी दास जैन ने कालक कथा 'सग्रह' ग्रन्थ मुद्रित कराया था । पर उसके बाद लाहौर पाकिस्तान में चला गया, इसलिए वह प्रकाशित नहीं हो सका । वैसे और भी कई सस्करण निकल चुके हैं ।

एक ही नाम के चार कालिकाचार्य हो गये है, अत् उनकी घटनाए मिल-जुल गई हैं उनकी ऐतिहासिक पृथक करण और समय निर्णय उपन्यास कल्याण विजयजी ने अपने निबन्ध मे बहुत अच्छी तरह कर दिया है । इससे सबसे पहले कालिकाचार्य कौन हुये । उसके बाद कब कब कौन हुये और उनकी सम्बन्धित घटनायें कौनसी है स्पष्ट हो गया है ।

विक्रम सवत् के प्रवतक सुप्रसिद्ध मालवन देश विक्रमादित्य के अस्तित्व और समय के सम्बन्ध मे विद्वानो में बहुत मतभेद रहा हैं । उसमे कालक कथा ने एक नई और महत्वपूर्ण दिशा प्रकाशित की । इससे कालक कथा का महत्व बहुत बढ गया ।

उज्जैन मे जब आचार्य कालक विराज रहे थे तो उनकी सती साध्वी और महान्-सुन्दरी वहिन सरस्वती पर वहा के गद्दिका शासक ने मोहि होकर उसे राजमहलो में मगवा लिया था । आचार्य कालक और जैन सघ ने उसका ब विरोध किया । राजा को खूब समझाया पर । नही माना तो अत मे कालिकाचार्य ने वि जाकर वहा के शाही राजाओ को सगठित क उज्जैन पर आक्रमण कराया और राजा की ब ठिकाने लगा दी । सरस्वती साध्वी का पु उद्धार किया । अन्याय का प्रतिकार इ सम्बल ढग से करके उन्होंने जैन शासन की स रक्षा की और गौरव बढाया । इसी प्रमग की पुन वृत्ति बड गच्छ के आचार्य भावदेवसूरि को 16 शताब्दी मे परिस्थिति वश करनी पडी । मिल के शासक को जबरदस्त शिक्षा देनी पडी, उस ऐतिहासिक वृतान्त प्रस्तुत लेख में प्रकाशित कि जा रहा है ।

मगलाचरण मे शारदा, ऋषभादि तीथ पुण्डरीकादि गणधर, गौतम, गणेश, गौरी, मह सद्गुर को नमस्कार कर भावदेवसूरी का सा व को कहा गया हैं । इसके पश्चात् स० 994 मे गच्छ की उत्पत्ति, 1596 मे पुण्य प्रभुसूरि के स पद प्राप्त कर विमलगिरि की यात्रा करने, उ पट्टधर शिष्य भावदेवसूरि जो कि लोटा डूमाप के पुत्र थे का उल्लेख किया है । स 170 इन्हे प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी । शीलदेवादि 18 विर उनके शिष्य थे । क्षेत्रपाल इनके सहायक लाहौर से कामरा को ये भटनेर चढा लाये उसकी कथा आगे कही जाती है ।

दिल्ली के बादशाह अकबर (हुमायू) का भ्राता कामरा लाहौर का था । इधर बीक मे राव कल्याण के पुत्र सूरसिंघ (रामसिंह) थे । उनके दलपत कुमार पुत्र था । उसे भटनेर दिया गया । उसने अपने प्रधान खेतसी काध को भटनेर भेज अपनी आज्ञा फिरवादी । खे वहा का अधिकारी नियुक्त हो गया । 10 वर्ष राज्य करने अन्तर किसी कारण वश

महाजन लोगों को कैद कर लिया। खेतसी को भूख ठीक से लगती नहीं थी, अतः वैद्य से पूछने पर गुरु (भावदेवसूरी) के पास एक भूख लगने की एक धातु है, ज्ञातकर उसने गुरू से वह मांगी। गुरुजी ने श्रावको को छोड़ देने की शर्त पर देने को कहा पर खेतसी ने वह बात नही मानी अतः गुरु ने वह औषधि नहीं दी। इसी बात को लेकर दोनों में तनातनी हो गयी। खेतसी ने क्रोधित हो रस्सी से बांध कर गुरु को कुएं में लटका दिया। कुंए के चारों ओर चौकी बैठा दी गई। रात्रि के समय क्षेत्रपाल ने आकर गुरु के बन्धन खोल बाजोर पर बैठा दिया उसने राजपूत को शिक्षा देने की आज्ञा मांगी पर गुरु ने कुंए से निकालने को ही कहा। गुरु के आंखें बन्द करते ही क्षेत्रपाल ने उन्हे बाहर निकाल दिया। वे वहां से पुसाल (उपासरे) जा क्षेत्रपाल को गढ़ के बाहर पहुंचाने की आज्ञा दी। तत्काल झोली में बैठाकर वीर ने वैसा ही किया। गुरु ने याद करने का कारण पूछा। गुरु ने अपना वृत्तान्त सुनाते हुए उसे साथ ले लाहौर की ओर चल पड़े 11-12 कोस जाने पर "खेतसी मेरी तेरी खोज करेगा अतः तू वापिस चलाजा" कहा श्रावक को विसर्जित कर और स्वय एक वृक्ष के नीचे बैठ गये।

इधर खेतसी के गुरु को कुंए में नही मिलने पर इधर-उधर ढूंढा। उसके (घुड) सवार गुरु के पास जा पहुंचे। उन्हे दूर से बैठा देखा पर पास जाने पर नही मिले। तब गुरु को चमत्कारी जान वे वापिस लौट गये और गुरु हमे कही नही मिले–खेतसी को कह दिया। क्रोधान्ध खेतसी ने हुक्म दिया कि उनकी पुसाल को तोड़ उनके शिष्यों को बन्दी बना लो। राजा के सेवकों ने वैसा ही किया। इधर गुरुजी सरसे पहुंचे और एक शिष्य को वहां से साथ लेकर लाहौर पधारे। श्रावको ने गुरु का आगमन सुनकर सम्मुख जा प्रवेशोत्सव किया। गुरु ने व्याख्यानादि द्वारा श्रावको को सन्तुष्ट कर 10-20 दिन के बाद सुलतान से मिलने का उपाय पूछा। श्रावकों ने कहा उसका दीवान गलित कुटी है, उसे आराम करने से काम बन जाएगा। गुरु ने उसे बुलाकर 7 पुड़ी दवा देकर नीरोग बना दिया। स्वस्थ होने पर वह दरबार में पहुंचा और सुलतान के उससे स्वस्थ होने का कारण पूछने पर उसने गुरु का परिचय दिया, शुभ मुहूर्त में गुरु सुलतान से मिले और चमत्कार दिखा सम्मान पाया। गुरु ने सुलतान को पारद धातु की औषधि दी इससे उसे बड़ी भूख लगने लगी। एक दिन हवाखोरी में गुरु को साथ ले कमरे के बाहर गया। वहां एक सघन वृक्ष की छाया में बैठे और यह वृक्ष अपने साथ चले तो कैसा अच्छा हो कहा। गुरु ने क्षेत्रपाल के द्वारा सुलतान की इच्छानुसार वृक्ष को साथ चला दिया। इसी प्रकार एक दिन 29 वे रोजे के दिन शिष्य को गुरु ने सुलतान के पास भेजा। सुलतान ने शिष्य से पूछा कहिये चेलाजी चन्द्र कब दिखेगा। शिष्य ने भूल से आज ही चन्द्र दिखेगा, उत्तर दिया। यह सुनकर दरबारी लोगों ने कहा चेला झूठा है और वे उससे वाद-विवाद करने लगे। सुलतान ने उन्हे समझाया कि चेलाजी के गुरु बड़े करामाती हैं अतः चेला का वचन झूठा नही होने देंगे।

वहां से आकर शिष्य ने सारी बात गुरु से कही और अपनी लाज रखने का निवेदन किया। गुरुजी ने भी वीर की सहायता से थाली को आकाश मे चढ़ाकर उसी दिन चन्द्रोदय कर दिखाया। इससे सुलतान व नगर निवासी बड़े चमत्कृत हुए। सुलतान ने बहुत प्रसन्न हो गुरू से अपने योग्य कोई काम फरमाने की विनती की। मौका देख गुरु ने भटनेर मे अपने श्रावकों को बंदी करने, पुसाल को ढाहने आदि खेतसी की सारी करतूतों को सुनाकर भटनेर अधिकृत कर श्रावकों को छुडाने के लिए सुलतान को उत्साहित किया। सुलतान ससैन्य रवाना हो भटनेर पहुंचा। गढ़घेर खेतसी को दूत भेजा पर वह न माना, इधर महिनों बीत गये पर गढ तोड न सके और पानी की भी कमी हो गई तब गुरु को विनती की गई उन्होंने मन्त्र बल से मेह बरसा दिया और सवारों को

साथ ले मन्त्रित चावलो से बुर्ज भी तोड डाला। सुलतान की सेना ने गढ मे प्रवेश कर खेतसी को हाथी के पग से बाध दिया, एव श्रावको को छुडवा दिया। अब तो खेतसी, सुलतान से छुडाने के लिए गुरु के आगे गिड गिडाने लगा तब गुरुजी ने दयाकर उसे छुडवा दिया और उसने पुसाल पुन बना देना मन्जूर किया। खेतसी ने सुलतान को बहुत सी भेंट दी। उसने उसे आधीन बनाया गुरु का काम करके शाह लाहौर चला गया। खेतसी ने अपने स्वामी दलपति (1) की आज्ञा प्राप्त कर गुरु की पुसाल बनवा दी। इस प्रकार दोनो मे मेल हो गया। गुरु ने प्रतिशोध ले जैन यतियो की शक्ति का परिचय देते हुए अन्य लोगो के लिए भी शिक्षा उपस्थित की।

इस रास में वर्णित घटना तो बीकानेर राज्य की अति प्रसिद्ध घटना है। कामरॉं का बीकानेर पर आक्रमण स० 1591 में राव जेतसी के समय मे हुआ था? इससे बीकानेर को चिन्तामणि-चउवीस मन्दिर की मूर्ति को भी क्षति हुई थी। इन सब बातों पर मैं अपने अन्य लेखो मे प्रकाश डाल चुका हू। प्रस्तुत रास घटना के 200 वर्ष के बाद बना होने से इसमें अतिरजितपना एव ऐतिहासिक नामो में गड-बडी पाई जाती है। रासकार ने इसे अकबर एव सूरसिंह व दलपतिसिंह के समय की बतलाई है पर वे नाम गलत हैं। वास्तव मे वहा नाम हुमायू एव रावजेतसी का होना चाहिये। इस रास मे पूर्व वर्ती 'नैणसी की ख्यात' मे इस घटना का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है—

'बड गच्छ का एक यति बीकानेर में रहता था। उसके पास कोई अच्छी चीज थी। रावजैतसी ने वह चीज उससे मागी, परन्तु यति ने दी नहीं। तब राव ने उसे मार कर वह वस्तु लेली। फिर कामरॉं हुमायू का भाई जो काबुल में राज करता था) हिदुस्तान पर चढ आया। उसी यति का चेला उससे आगे जाकर मिला और कहा "आप उधर चलें तो भटनेर का कितना हाथ आवे। कामरा ने कहा कि उधर जल नहीं है। चेला बोला कि जल मुझसे प्राप्त होगा। कामरा उसको साथ लिए भटनेर को चला। मार्ग मे जल न मिलने से कटक प्यासो मरने लगा तब यति ने क्षेत्रपाल की आराधना की। मेह बरसा और जल ही जल हो गया। ये भटनेर पहु चे। तुर्कों ने पीछे फिर कर खेतसी को मारा। भयकर युद्ध हुआ, कई आदमी मारे गये कामरॉं भटनेर मे थाना रख बीकानेर आया।

ना प्र आया प्रशस्ति (मुहणोत नैणसी की ख्यात द्वि भाग पृ 142)

बीकानेर राज्य के प्रधान ऐतिहासिक ग्रथ "दयासदास की ख्यात" मे लिखा है कि 'भावदेव सूरि नाम के एक जैन पडित ने, जिससे राठोडों से कुछ कहा सुनी हो गयी थी, दिल्ली जाकर कामरॉं से भटनेर के गढ की बहुत प्रशसा की जिस पर उस कामरॉं ने ससैन्य भटनेर को घेर लिया। कुछ दिनो के युद्ध के बाद उस गढ का स्वामी खेतसी मारा गया और वहा कामरॉं का अधिकार हो गया।"

(जि० 2 पत्र 14)

मान्यवर स्व० ओझा जी ने बीकानेर राज्य के इतिहास का भा० 1 पृ० 930 मे उपयुक्त उद्धरण देते हुए इसमे दिल्ली से आने के उल्लेख को देख इसे निराधार बतलाते हुए लिख दिया किन्तु एक जैन पण्डित को दिल्ली जाकर कामरॉं को भटनेर पर चढा लाने की बात निराधार है, क्योंकि यह घटना बाबर की मृत्यु (वि०स० 1587 ई० 1530) के बाद की है। अब कामरॉं लाहौर मे था और वहा से ही चढकर आया होगा।"

बीकानेर राज्य की अनूप सस्कृत लाइब्रेरी के एक अन्य हस्तलिखित ग्रन्थ मे कायलान खेतसी की बात है उसमे भी उपर्युक्त घटना का उल्लेख है अत यहा उसे भी उद्धृत कर दिया जाता है—

"बात–भटनेर शहर कांधलोत खेतसीह राज्य करै, भटनेर माहि बड़-गच्छामथेन भावदेवसूरि रहें, तिणहरा शिष्य शीलदेव मालदेव । सुरयाँरै रसकुंप हाथ आयो हुतो, सोनी कीयो, पछै वेचीयो । पछै सौनारे वाणीए जाइ खेतसी नु कह्यौ अै मथेन सोने करै छै । ताहरा एक दिन खेतसी जी आदमी मेल्हीयो । सोनो म्हारे चही जै छै । म्हें पइसां देय्या । ताहरांईयां सोनो दीयो, वले मास 4 आडाधाती मंगायो, वले दीयो । वले मास 4 आडाधानिन मंगायो वले दीयो । वले मास 4 आडाघाति मंगायो ताहरां उत्तर दीयो । कह्यो सोनों म्हां फकीरां कहा । ताहरांईयां कोई बात हुतीसु आलोप की । ईयांनु बोलाया, कह्यौ-सोनोद्यो, अनै ठाठ्यां-मीठयाँ घवा ही, दीपा-पिण पतगारै नहीं । पछै रो कीया, तब रीसकीवी, पिण दै नहीं । कोहर (कुआं) मांह उसारीया पण पतगरै नहीं । ताहराँ 'भावदेव' भार रे मुंह डै मूयो । ताहरां चेला दोनूं छोडि दिया । ताहरां चेला ज्योतिषी हुता । जाइनै काविल कुवरै पाति-साह नु मिलीया । प्रश्न की यो जोतिकरी बात पूछी, उनाँ कही बात मिली । ताहरां द्रव्य देण लागो, ऐ कहै–द्रव्य न ल्यां, म्हारो गुरु राठोड़ खेतसी मारियो छै सुथे म्हहरो ऊपर करों । ताहराँ सारि हकीकत कही । ताहरां खेतसीह उपरी मुहिम रो हुक्म कीयो । आपै पिण तयारी हुयी, ण्छै मथेन ले आया पातिशाह आवतो सुणि खेतसीह साम्हो गयो । भेट दे मिलीयो । पातिसाह आगै नुं घनक-धरियो आगे पाणी नही घरती माहे । ताहरां ईयां मेह वरसायो । पातिसाह आंधी चालीयो, ताहरां मथेनां अरज की जुहमैनुं छोड़ मतां जावो । घिरता नु थानुं दोहरो लागसी । पछै पातिसाह अपूतो-घिरियो खेतसीह सुणीयो–पातिसाह आवै छै । ताहरां जुहर कर कांम आयो । पाछै पातिसाह बीकानेर आ ' ो। रावजी जेतसीहजी लड़ाई कीवी । पातिसाह भागो । रावजीरी जैत हुई ।

॥ वात कांधलोत खेतसी री संपूर्ण ॥

उपरोक्त बात की भाषा राजस्थानी है अतः उसका संक्षिप्त सार दे दिया जाता है—

भटनेर शहर में कांधलोत खेतसिंह राज करता था वहीं बड़गच्छ के मथेन (महात्मा, यति) रहते थे । उनके शीलदेव और मालदेव दो शिष्य थे । संयोग वश उनको इस कुपिका की प्राप्ति हुई इसे सोना बना के वेचा । वनिक ने यह वात खेतसी को कही । उसने भाव देव सूरि से सोना मांगा गुरु ने 2—3 वार दे दिया पर खेतसी का लोभ बढ़ता ही गया तव अंत में गुरु ने सोना देने से इन्कार कर दिया । खेतसी ने बहुत चेष्ठा की पर वे राजी नही हुए । अन्त में खेतसी ने भावदेव को मरवा डाला । उनके शिष्य अच्छे ज्योतिषी थे वे कावुल के पातसाह से मिले उसे ज्योतिष का चमत्कार दिखाया । उनका कहा हुआ भविष्य खरा उतरा । वादशाह ने उन्हें द्रव्य लेने को कहा पर उन्होंने न लेकर भटनेर की हकीकत कह उस पर चढ़ाई कर गुरु का बदला लेने को प्रेरित किया । वादशाह ने ससैन्य चढ़ाई की । खेतसी ने भेंट दे उसे प्रसन्न कर लिया । वादशाह आगे चलाने लगा पर जलाभाव था । चेलों ने मेह वरसाया, और खेतसी को ऐसे ही छोड जाने से वापिस आने समय उत्पात करेगा, कहा । वादशाह ने वापिस घेरा डाला । खेतसी ने जौहर किया । वादशाह बीकानेर पर चढ़े पर राव जैतसिंह ने उन्हें परास्त किया अतः वह भाग खड़ा हुआ विजय जैतसिंह की हुई ।

राव जैतसिंह को कामरां पर विजय की प्रशंसा को लेकर तत्कालीन तीन राजस्थान कवियो ने 1-2 जैतसी का छंद, जैतसी रासो, ग्रन्थ वनाये । जिनमें से एक L P. टेसीटेरी ने रायल एसोसियाटिक सोसायटी कलकत्ते से प्रकाशित कर दिया है । न० 3 की दो प्रतियाँ हमारे सग्रह में है, उसे प्रकाशित करवा दिया है । नं०2 वात जैतसी छन्द अभी अप्रकाशित है । अनूप सस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ में है ।

ऊपर मे दिये गये चारो प्रमाणों पर विचार करने से यह तो निश्चित हो जाता है कि भावदेव सूरि को किसी कारणवश से तनातनी हो गई और उन्होंने लाहौर से कामरां को भटनेर पर चढ़ाई करवाई । पर कई विरोधी बातों का समाधान

अभी समकालीन प्रमाणो के अभाव मे नही हो सकता। समकालीन प्रमाणो में जैतसी के रासत्रय एव चिन्तामणि मूर्ति का अभिलेख ही हैं जिनमें उनका निर्देश नही है वे विरोधी बातें इस प्रकार हैं—

1 खेतसी और भावदेवसूरि के अनबन होने का कारण—

रासकार ने धातु-औषधि कोई चीज दिखाई और बात मे सोना बतलाया है। इनमे स्वर्ण ज्यादा सभव लगता है।

2 भावदेवसूरि या खेतसी का मारा जाना—

रासकार ने दोनों का परस्पर मेल कराके छोड दिया है। मुहरणोत नैणसी की ख्यात एव दयालदास और बात के अनुसार खेतसी मारा गया निश्चित होता है। बात एव नैणसी की ख्यात मे इससे पहले भावदेवसूरि को खेतसी ने मार डाला और उनके शिष्यो ने प्रतिशोध लिया लिखा है, पर वह ठीक नही मालूम देता, क्योंकि भावदेवसूरि स 1614 (कल्पान्तर्वाच्य की गुर्वावलि के अनुसार) तक विद्यमान थे। अत बात एव ख्यात लेखक के कथन में सच्चाई हो तो यह सभव हो सकता है कि भावदेवसूरी के गुरु के समय मे यह घटना हुई है, उन्हे मार डाला गया हो और प्रतिशोध भावदेवसूरि ने लिया हो। अत रासकार ने उन्हे ही सारी घटनाओ का नेता बना दिया हो। यह इसलिए भी सभव प्रतीत होता है है कि भावदेवसूरी को आचार्य पद स 1604 में मिला था जैसा कि सर्वत्र कहा गया है कि वे घटना (स 1591) के समय वे आचार्य पदारूढ थे अत यह घटना उनके गुरु के समय में घट सकती है। पूज्य-प्रभु सूरि मारे गये हों, उसका प्रतिशोध लेने मे समय बीत जाने के कारण भावदेवसूरिजी को आचार्य-पद देरी से मिला हो, यह सभव है। बीकानेर के इतिहास के अन्त में विजय राव जैतसी की रही, निश्चित ही है। स 1591 चौबीसी मूर्ति व कामरा ने भग कर दिया यह प्रतिम लेख से सिद्ध है।

जो भी हो भावदेवसूरि ने जैन श्रावकों को जब अकारण कैद कर दिया तो उन्होंने छोडने की शर्त रखी यह उचित ही था। भटनेर के शासक ने जब उन्हें नही छोडा तो धातु औषधिया स्वर्ण नही दिया। खेतसी ने कुपित होकर उन्हे कुए मे डाल दिया, इस अन्याय अत्याचार का बदला कामरा को चढा लेने के रूप मे लिया गया। इससे शासक मनमाना अत्याचार न करे इसी भावना से शक्ति दिखानी पडी। यह सब तरह से काल्पान्तर्वाच्य द्वारा उज्जैनी नरेश को शिक्षा देने से हुआ।

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्त, प्रादुर्भवन्ति नाङ्कुर।
कर्म बीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुर॥

—बीज के जल जाने पर अकुर उत्पन्न नही होता, वैसे ही कर्म के बीज जल जाने पर भवाकुर (जन्म-मरण का चक्र) नहीं उगता॥

स्याद्वाद का महात्म्य

लेखक—प० पू० अध्यात्मयोगी पन्यास प्रवर श्री भद्रंकर विजयजी गणिवर्य

अनुवादक—मुनि रत्नसेन विजयजी म०सा०

स्यादाद्व अथवा अनेकांतवाद का ज्ञान प्राप्त करना, यह कोई सामान्य बात नही है । स्याद्वाद अर्थात् अपेक्षावाद अथवा नयवाद । नयवाद अति-गंभीर है । जैन शास्त्रकारों ने जैसे तैसे व्यक्ति को नयवाद समझाने का निषेध किया है । आर्य रक्षित सूरि (विक्रम संवत 100) के समय से जैन शास्त्रों को चार अनुयोगो में वांटा गया है । अनुयोग अर्थात् विभाग अथवा व्याख्यान द्वार वे चार है द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग और चरण करणानुयोग शास्त्र में ऐसा कहा गया है कि यदि विशिष्ट योग्यता वाला श्रोता न मिले तो उसके आगे नय का विवेचन नहीं करना चाहिये । जिसको वृत्ति मध्यस्थ हो और जिसकी बुद्धि अतिनिपुण तथा गम्भीर हो—ऐसे योग्य श्रोता के आगे, नयवाद में विशारद सम्यग् दृष्टि मुनि को नयवाद का निरूपण करना चाहिये ।

नयवाद के कथन के लिए वक्ता तथा श्रोता उभय ऊपर इतनी अधिक जिम्मेदारी है, इसके पीछे गम्भीर आशय है । सामान्य जनसमूह अनेक प्रकार के राग द्वेषों से घिरा हुआ होता है । मनुष्य को सबसे अधिक आग्रह और पक्षपात अपने अभिप्राय के प्रति होता है । (दृष्टिरागस्तु पापीयान् दुरुच्छेदः सतामपि श्री वीतराग स्तोत्र) एक अंग्रेज लेखक ने भी ठीक ही कहा है । Man has a more liking for his mental children than even physical ones.

"मनुष्य को अपनी शारीरिक सन्तान से भी अधिक प्रेम मानसिक सन्तान के प्रति होता है'—अपने अभिप्राय के प्रति का अयोग्य अनुराग, एकान्त, आग्रह ही मनुष्य को सत्य की पहिचान कराने में अन्तराय रूप है क्योंकि सत्य यह किसी एक अभिप्राय के अधीन नहीं है बल्कि वस्तु स्वरूप के अधीन है । वस्तु का स्वरूप एक धर्मात्मक नहीं बल्कि अनन्त धर्मात्मक है ।

अनेक धर्मात्मक वस्तु को किसी एक अभिप्राय के साथ बांधने में आवे तो सत्य की प्राप्ति आकाश कुसुमवत् वन जाती है । पण्डित नेहरू ने भी कहा है कि Truth is always realative to our standpoint" कोई भी कथन निरपेक्ष रूप से सत्य नही, सत्य हमेशा अपने दृष्टि बिन्दुओ के सापेक्ष है ।

हाथी को स्तम्भ तुल्य कहने वाला अंधा अपने दृष्टि विन्दु से सत्य ही है किन्तु सुपड़े तुल्य कहने वाले अन्धे के दृष्टि विन्दु मे तो असत्य ही है । सम्पूर्ण हाथी को जानने के लिए सम्पूर्ण हाथी के वताने वाले समस्त दृष्टि विन्दुओं को जानने की अपेक्षा रहती ही है—इसी का नाम अनेकान्त-

वाद है। एकान्त हमेशा असत्य है और अनेकान्त यही सत्य है। कोई भी वाक्य मुख्य रूप से वस्तु के एक धर्म को ही बतलाता है वस्तु के अन्य धर्मों को जानने के लिए स्यात् पद की आवश्यकता रहती है। स्यात् पद से अंकित अथवा स्यात् पद से सापेक्ष वाक्य ही सत्य को बतलाने वाला है, उसके सिवाय अन्य वाक्य सत्य का अपलाप करने वाला है, इससे एकांत है और एकान्त यह मिथ्यात्व है।

अनेकान्तवाद यही तत्ववाद है। एकान्तवाद से तत्ववाद की व्यवस्था सम्भव नहीं है। दुनिया मे जितने भी असत्य मत हैं, उन सबकी उत्पत्ति एकान्तवाद से ही हुई है। ससार में जितने भी राग द्वेप अथवा कलह दिखाई देते हैं उसका मूल भी एकान्तवाद का आग्रह ही है।

एकान्त यह वस्तुगत धर्म नहीं है बल्कि बुद्धि-गत धर्म है वस्तु हमेशा अनेकान्तमय—अनेक धर्मात्मक होती है उसको एक धर्म से मर्यादित कराने वाली बुद्धि ही सर्व दुराग्रह का मूल है। अनेकान्तवाद के द्वारा बुद्धि जब परिष्कृत बनती है तभी वह परिष्कृत बुद्धि वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने में समर्थ बनती है। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने में अप्रशस्त राग और द्वेष का शमन होता है और सत्य की प्राप्ति होती है।

नयो का निरूपण एकान्तवाद को पुष्ट करने वाला न बन जाय, इसकी सावधानी नय विशारद वक्ता को रखनी चाहिये। स्थिर बुद्धि वाले योग्य श्रोता के आगे ही नय की सूक्ष्मता से चर्चा करनी चाहिये।

नन्दी सूत्र में तीन प्रकार के श्रोता कहे हैं—अपरिणत-अतिपरिणत और परिणत। नय चर्चा को सुनकर अपरिणत श्रोता किसी एक पक्ष का निर्णय नहीं कर सकता है बल्कि सन्देह में पडता है। अतिपरिणत श्रोता किसी एक पक्ष के एकान्त आग्रह में पड जाता है। परिणत श्रोता एकान्त से आग्रह में नहीं पडता है परन्तु नय चर्चा के लिये विशिष्ट प्रकार की बुद्धि आवश्यक है अत विशिष्ट बुद्धिमत परिणत श्रोता ही नय उपदेश के लिये योग्य हैं।

अनेकान्तवाद यह सापेक्षवाद है, अत वस्तु के यथार्थ स्वरूप को बतलाता है। एकान्तवाद यह निरपेक्षवाद है अत वस्तु के अयथार्थ विपरीत स्वरूप को बताने वाला होने से मिथ्या है अप्रमाण है। स्याद्वाद श्रुत रूप प्रमाण से ज्ञात वस्तु का ज्ञान ही असंदिग्ध और निर्भ्रान्त होता है। भ्रान्ति और संदेह ये ज्ञान के दोष हैं। दूषित ज्ञान से होने वाली प्रवृत्ति अयथार्थ ही होती है और यथार्थ प्रवृत्ति बिना इष्ट की सिद्धि नहीं हो सकती है, जिस प्रकार इष्ट सिद्धि के लिये यथार्थ प्रवृति की आवश्यकता है, उसी प्रकार यथार्थ प्रवृत्ति के लिये असंदिग्ध और अभ्रान्त-ज्ञान की भी आवश्यकता है। सन्देह और भ्रान्ति रहित यथार्थ और सापेक्ष ज्ञान द्वारा ही हेय का त्याग, उपादेय का ग्रहण और उपेक्षणीय की उपेक्षा हो सकती है और उसी के परिणाम स्वरूप सच्ची शांति व सुख प्राप्त कर सकते हैं।

प्रत्येक दर्शनकारो ने पदार्थ विज्ञान (Metaphysics) और आचार शास्त्र (Ethics) बताने के साथ ज्ञान प्रक्रिया (Epitemology) भी बतलाई है, क्योंकि पदार्थ विज्ञान और आचार धर्म की सत्यता का आधार यथार्थ ज्ञान प्रक्रिया के ऊपर ही अवलंबित है। ज्ञान प्रक्रिया यदि सत्य होगी, तभी सच्चा पदार्थ विज्ञान हो सकता है और तभी आचार धर्म का पालन हो सकता है। अन्य दर्शन-कारो द्वारा बतलाई हुई ज्ञान-प्रक्रिया मुख्य रूप से एकान्तवाद मूलक होने से, अनेक धर्मात्मक वस्तु का किसी एक धर्म द्वारा ही ज्ञान कराती हैं, वह ज्ञान आंशिक सत्य रूप होने पर भी अन्य धर्मों का अपलाप करने वाली होने से असत्य बन जाती है इससे मिथ्यात्व की वृद्धि होतीहै। तथा जीवों के सन्देह निवारण मे निरुपयोगी बनती है। स्याद्वाद

श्रुत के आश्रय बिना जीव के वास्तविक अज्ञान का निवारण नहीं हो सकता है और तब तक किया गया कष्ट भी अज्ञान कष्ट ही कहलाता है।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसुरीश्वरजी भगवान महावीर परमात्मा की स्तुति करते हुए फरमाते है कि—

पर सहस्राः शरदस्तपांसि,
युगान्तरं योगमुपासतांवा ।
तथापि ते मार्गमनापन्ततो न,
मोक्ष्यमाणा अपि यान्ति मोक्षम् ।।

हे भगवान, दूसरे हजारों वर्षो तक तप तपे और युगान्तरों तक योग को साधे फिर भी जब तक स्याद्ववाद श्रुत से प्रकाशित ऐसे आपके मार्ग का अनुसरण न करे तब तक मोक्ष की इच्छा होने पर भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

स्याद्वार श्रुत की लोकोत्तर उपयोगिता मुक्ति मार्ग की साधना में रही हुई है मोक्ष मार्ग अतिन्द्रिय है। आत्मा, कर्म उन दोनों का संबंध, संबंध के हेतु, उसके वियोग के कारण आदि आदि अतीन्द्रिय ज्ञानगम्य है। इस कारण इन पदार्थो में अनेक प्रकार की भ्रान्तियां स्खलनाएं और संशय आदि की सम्भावनायें रहती है। जब तक इन सब का बुद्धिगम्य और श्रद्धाग्राह्य निराकरण न हो जाय, तब तक मुमुक्षु आत्मा भी मोक्ष मार्ग में सच्ची प्रगति नहीं कर सकती है। स्याद्वाद श्रुत से उनका बुद्धिगम्य और श्रद्धाग्राह्य निराकरण हो सकता है एक एक धर्म के ग्रहण से उत्पन्न अन्य दर्शनकारों की त्रुटियां भी इनसे दूर होती है, और वस्तु का सर्वदेशीय ज्ञान भी इसी से प्राप्त होता है, जिसके परिणाम स्वरूप मुक्ति के लिए सच्चा ज्ञान और सच्ची क्रिया के लिए यथार्थ उद्यम हो सकता है।

ज्ञान गर्भित वैराग्य के लिए अनेकान्त वाद अथवा स्याद्वाद श्रुत के अवलम्बन की कितनी अधिक आवश्यकता है, इसको समझने के लिए आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी म. की निम्न पंक्तियां अत्यन्त उपयोगी बनती है। वे फरमाते है कि—

आत्मा एक ही है आत्मा नित्य ही है, आत्मा अबद्धही है, आत्मा क्षणक्षयी ही हैं आत्मा असत् ही है इत्यादि एकान्त निश्चय से संसार की निर्गुणता को बारंबार देखने पर भी और उसके त्याग के लिए उपशम और सदाचार का भाव से सेवन करने पर भी उन पुरुषों का वैराग्य, ज्ञान गर्भित नहीं वलिक मोहगर्भित ही है।"

"सद्ज्ञान गर्भित वैराग्य उन्हीं को होता है जो स्याद्वाद न्याय का अवलंबन लेकर आत्मा को समष्टि रूप मे एक, किन्तु व्यक्ति रूप में अनेक, द्रव्य रूप में नित्य, किन्तु पर्याय रूप में क्षणिक, निश्चय नय से अबद्ध किन्तु व्यवहार नय से बद्ध, पर स्वरूप में असत्। किन्तुस्वस्वरूप में सत् मानता है तथा संसारदशा में आत्मा बाह्य पौद्गलिक कर्म के संबंध से इच्छा द्वेष आदि कषायों के पराधीन बनकर भयंकर भव संसार में भटकती है ऐसी अपनी आत्मा को संसार में से मुक्त करने के लिए जो आत्मा विधिपूर्वक संसार का त्याग करती है, उन्ही आत्माओं का वैराग्य ज्ञानगर्भित और सिद्ध का अनन्य साधन बनता है।'

श्री हारिभद्रीय अष्टक 10

स्याद्वाद के नाम पर कितनी गलत मान्यताएं भी प्रचलित है कई लोग कहते है कि स्याद्वाद यह संशयवाद हैं तो कई लोग कहते है कि स्याद्वाद यह समन्वयवाद है। वस्तुतः यह बात सत्य नही है।

स्याद्वाद यह संशयवाद नहीं वल्कि सर्व संशयों को छेदने वाला निश्चितवाद है। जो वाक्य जिस अपेक्षा से कहा जाता है, उस अपेक्षा से वह वाक्य सत्य ही है, यह बात स्याद्वाद निश्चयपूर्वक कहता है। उदाहरण के लिए स्याद्वादी द्रव्य दृष्टि से आत्मा

को नित्य ही मानना है और पर्याय दृष्टि से अनित्य ही मानता है द्रव्य दृष्टि से आत्मा नित्य भी है और अनित्य भी है तथा पर्याय दृष्टि से आत्मा नित्य भी है और अनित्य भी है ऐसा स्याद्वादी कभी नही मानता है। निश्चयपूर्वक कहने पर भी स्यात् शब्द का प्रयोग इसीलिए करता है कि आत्मा जिस प्रकार द्रव्य दृष्टि से नित्य धर्म वाला है उसी प्रकार पर्याय दृष्टि से अनित्य भी है इस बात का विस्मरण न हो जाय। इस सत्य बात का विस्मरण हो जाय तो एकान्तवाद आ जाता है और एकान्तवाद मे तत्व की प्राप्ति नही होती है। इस प्रकार स्याद्वाद वह सशयवाद नही बल्कि यथार्थ निर्णय कराने वाला सुनिश्चितवाद है।

स्याद्वाद यह सर्व धर्म समन्वयवाद रूप भी नही हैं, स्याद्वाद वस्तु मे रहे अनत धर्मों को, किसी भी एक धर्म का अपलाप किये बिना स्वीकार करता हैं, इसलिए उसे वस्तु के सर्व धर्मों का समन्वय करने वाला, कहना यह दूषण रूप हैं। किन्तु एकान्तवाद की नीव पर रचे हुए सर्व धर्म मुक्ति को देने वाले हैं– यह कथन नितान्त असत्य है, स्याद्वाद के लिए भूषण रूप नहीं किन्तु दूषण रूप है।

अधकार और प्रकाश की भांति एकान्त और अनेकात का परस्पर अत्यन्त विरोध हैं। "विधि-निषेध अथवा बाह्य आचारों की कुछ समानतायें देखकर सर्व धर्म मार्ग एक रूप हैं – ऐसा स्याद्वादी नही कह सकता हैं। स्याद्वादी वही हैं जो समानता को समानता और असमानता को असमानता कहे। सर्व धर्मों के आचार तथा विधि निषेधो में जैसे कितनी ही समानताए दिखती हैं, उसी प्रकार से असमानताए भी पार बिना की है। भक्ष्य-अभक्ष्य पेय- अपेय, गम्य, अगम्य तथा कृत्य अकृत्य के विभागों मे काफी भिन्नताए हैं, हिंसा अहिंसा के विधि निषेध तथा उत्सर्ग अपवादो मे और जीव अजीव आदि तत्व विषयक विवेचनो मे भी आकाश पाताल जितना अन्तर है, फिर भी सर्व धर्मों तथा उनके प्रणेताओं के बीच कुछ भी भेद नहीं हैं- सम्पूर्ण साम्यता है, ऐसा कहना स्याद्वाद नहीं किंतु मृषावाद ही है।

स्याद्वादी का सर्व धर्म समन्वय वाद भिन्न ही है और वह सत्य को सत्य रूप मे और असत्य को असत्य रूप में पहिचान कर असत्य के परिहार और सत्य के स्वीकार में रहा हुआ है। असत्य का मिथ्या पक्ष न करना और सत्य का द्वेष न करना, यह स्याद्वादी की सच्ची मध्यस्थता है। सत्य और असत्य के बीच भेद विवेक न करना, यह मध्यस्थता नही बल्कि मूर्खता ही है। इस बात को स्याद्वादी दृढतापूर्वक मानता है सत्य असत्य दोनो को समान मानना, यह अपेक्षा से असत्य का पक्षपात और सत्य का ही द्वेष है।

स्याद्वादी की सच्ची मध्यस्थता हमे श्री हरि भद्रसूरीश्वरजी की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हो जाती है।

तत्रापि न द्वेष कार्यो विषयस्तु यत्नतो मग्ट्य ॥
तस्यापि न सद्वचन सर्व यत्प्रवचनादन्यत् ॥

अन्य शास्त्रो के विषय मे भी द्वेष करना योग्य नहीं है, उनके विषय को प्रयत्न पूवक समझना चाहिए। उनका भी जो सद्वचन है वह प्रवचन द्वादशांगी से भिन्न नहीं है।

कोई भी वचन स्वय स्याद्वादी को प्रमाण रूप अथवा अप्रमाण रूप अथवा नहीं है, विषय के परिशोधन से ही वह प्रमाण रूप अथवा अप्रमाण रूप बनता है।

फिर चाहे वह स्वशास्त्र का हो या परशास्त्र का, जिसका विषय दृष्ट और इष्ट (परोक्ष) से अविरुद्ध हो वह वाक्य प्रमाण रूप है और जिसका विषय प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो से बाधित हो वह वाक्य अप्रमाण रूप है। वस्तु अनेक धर्मात्मक है

किसी एक धर्म को उद्देश्य कर कहा हुआ वाक्य, उस धर्म के उद्देश्य की अपेक्षा से सत्य है, किन्तु अन्य धर्म को तिरस्कृत कर कहा हुआ वही वाक्य असत्य है।

ज्ञान में रहते हुए संशय आदि दोषों का निवारण नयवाद तथा सप्तभंगी के ज्ञान बिना शक्य नहीं है। नयवाद तथा सप्तभंगी का ज्ञान यह वस्तु के यथार्थ बोध का अनन्य साधन है।

अंत में हम इस बात को निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि आज अथवा कल इस जन्म में अथवा पर जन्म में जिस मोक्ष मार्ग की आराधना करने की है, उसे स्याद्वाद चक्रवर्ती की अनेकान्त रूपी मुद्रा आज्ञा के अधीन हुए बिना छुटकारा ही नहीं है।

भूत तथा भविष्यकाल में क्रमशः जो भी मुक्ति को प्राप्त हुये हैं, और होंगे वे सभी स्याद्वाद की आराधना करके ही।

लेख समाप्ति के साथ ही कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी की निम्न पंक्तियां याद आ जाती है—

इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणा
मुदार घोषामवघोषणां ब्रुवे।
न वीतरागात् परमास्ति दैवतं
न चाप्यनेकान्तमृते नयस्थितिः ॥

सर्व वादियों के समक्ष हमारी उच्च स्वर से यह घोषणा है कि वीतराग को छोड़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ देवता नहीं है और अनेकान्तवाद को छोड़कर दूसरी कोई श्रेष्ठ नीति नही है।

०:—:०

चैत्य वन्दनतः सम्यक्, शुभो भावः प्रजायते।
तस्मात् कर्मक्षयः सर्वं, ततः कल्याणमश्नुते ॥

—समर्थ शास्त्रकार महर्षि

हरिभद्रसूरिजी

भावार्थ—जिनबिंब को सम्यग् रीतिए वन्दन करने से प्रकृष्ट शुभभाव उत्पन्न होता है। शुभभाव से कर्मक्षय होता है और कर्म के क्षय से सर्व कल्याण की प्राप्ति होती है।

संस्कृत साहित्य और जैन दर्शन

☐ डॉ० कोकिला जैन

सस्कृत साहित्य के विकास में जैनाचार्यों का अत्यधिक योगदान रहा है, उन्होंने महाकाव्य लिखे हैं पुराणों की रचना की है कथा साहित्य लिखने में भी वे कभी किसी से पीछे नहीं रहे। इसी प्रकार नाटक, छन्द, अलकार, व्याकरण जैसे विषयो पर भी अपार साहित्य लिखा है। राजस्थान के जैन ग्रथागारों मे इन आचार्यो द्वारा निबद्ध सस्कृत का विशाल साहित्य सग्रहीत है जिसके सूचीकरण के अतिरिक्त अभी तक पूरा परिचय भी साहित्यिक जगत् को प्राप्त नही हुआ है।

सस्कृत भाषा मे निबद्ध आचार्य रविषेण का पद्मचरित्र अथवा पद्मपुराण पुराण साहित्य मे विशिष्ट स्थान रखता है इसी तरह भगवत् जिनसेनाचार्य द्वारा रचित हरिवशपुराण एव जिनसेनाचार्य रचित महापुराण पुराण साहित्य की बेजोड कृतिया है। इनका पठन-पाठन एव स्वाध्याय आज भी प्रतिदिन हजारो लाखो व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। बारहवीं शताब्दि मे होने वाले आचार्य हेमचन्द्र का त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र भी सस्कृत भाषा की अनुपम कृति है, जिसकी लोकप्रियता सर्वविदित है। ये सभी ग्रथ पुराण साहित्य के मूलस्रोत हैं जिन पर आगे होने वाले भट्टारक सकलकीर्ति, ज्ञानभूषण, शुभचन्द्र जैसे पचासो विद्वानो ने साहित्य निबद्ध किया है।

पुराणों के अतिरिक्त वाग्भट का नेमिनिर्वाण, जटासिंहनन्दि का वैरागचरित, वीरनन्दि का चन्द्रप्रभ चरित जैसे महाकाव्य सस्कृत साहित्य को गौरवान्वित करने वाले हैं। जिनसेन का पार्श्वाभ्युदय समस्या मूलक काव्य है जो महाकवि की काव्यत्व शक्ति को प्रदर्शित करने वाला है। व्याकरण साहित्य में पूज्यपाद के जैनेन्द्र व्याकरण आचार्य हेमचन्द्र के शब्दानुशासन के महत्व से सभी परिचित हैं। इसी तरह सस्कृत साहित्य की अन्य सभी विधाओ को विकसित करने में जैनाचार्यों एव विद्वानो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमे कथा साहित्य का विशेषत नामोल्लेख करना मैं आवश्यक समझती हू। हरिषेणाचार्य का कथाकोष, मुमुक्षु रामचन्द्र का, पुण्याश्रव कथा कोष, भट्टारक सकलकीर्ति का व्रत कथाकोष,

आचार्य सोमकीर्ति की सप्तव्यसन कथा एवं ऐसी ही पचासों कथा कृतियां संस्कृत साहित्य की महत्व-पूर्ण कृतिया हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति इतिहास एवं सामाजिकता के सहज ही दर्शन होते है ।

इन सब विषयों के अतिरिक्त जैनाचार्यो ने संस्कृत भाषा में दर्शन साहित्य की भी जी खोल कर रचना की है । जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार जगत में जड़ और चेतन दो पदार्थ है। सृष्टि का विकास इन्ही पर आधारित है। जीव का लक्षण चैतन्यमय कहा गया है। जीव अनन्त हैं और उसमें आत्मगत समानता होते हुए भी संस्कार कर्म और वाह्य परिस्थिति आदि अनेक कारणों से उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास में बहुत ही अन्तर आ जाता है। इसी कारण सवकी पृथक सत्ता है और सब अपने कर्मानुसार फल भोगते है। अनन्त जीवों का पृथक पृथक अस्तित्व होने तथा कर्मो की विविध वर्गणाओं के कारण उनके विचारों में विभिन्नता होना स्वाभाविक है। एक ही मनुष्य में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार अलग अलग विचार उत्पन्न होते रहते है।

इन्हीं विचारों का प्रतिपादन करने वाला आचार्य उमास्वाति का तत्वार्थ सूत्र संस्कृत साहित्य की अनुपम कृति है जिस पर आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि एवं आचार्य विद्यानन्द ने श्लोक वार्तिक जैसी वृहद् टीका लिखकर जैन दर्शन के गूढ़ तत्वों को उद्‌घाटित किया है। सर्वार्थसिद्धि में प्रथमसूत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य पूज्यपाद ने लिखा है—किसी निकटभव्य ने एक आश्रम में मुनिपरिषद् के मध्य में स्थित निर्ग्रन्याचार्य से विनयसहित पूछा—भगवन् आत्मा का हित क्या है? आचार्य ने उत्तर दिया—मोक्ष भव्य ने पुनः प्रश्न किया—मोक्ष का स्वरूप क्या है और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है? इसी प्रश्न के उत्तर स्वरूप "सम्यग्दर्शन ज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः" सूत्र रचा गया है।

पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि के पंचम अध्याय में द्रव्य, गुण और पर्यायों का स्पष्ट एवं पूर्ण विवेचन किया है। यह विश्व पृथक से और कुछ नहीं है, छह द्रव्यों के समुदाय को ही विश्व कहते हैं। वे छः द्रव्य है—जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। जीव को छोड़कर वाकी पांच द्रव्य अजीव है। इस तरह यह सारा जगत् चिदचिदात्मक है। जीवद्रव्य अनन्त है और पुद्‌गल द्रव्य उनसे भी अनन्त गुणे है। धर्म-अधर्म और आकाश द्रव्य एक एक हैं—आकाशादेक द्रव्याणि। काल द्रव्य असंख्यात है। ज्ञान दर्शन स्वभावी आत्मा को जीव द्रव्य कहते है। जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाया जाय वह पुद्‌गल है—उपयोगों लक्षणम् सद्विविचोअष्ट चतुर्भेदः स्पर्श रस गंध वर्णवन्तः पुद्‌गलाः। जितना इन्द्रियों के माध्यम से दृश्यमान जगत है वह सब पुद्‌गल का ही परिणमन है। अत. पुद्‌गल ही है। स्वयं चलते हुए जीवों और पुद्‌गलों को गमन में जो सहकारी कारण है, वह धर्म द्रव्य है। गतिपूर्वक स्थिति करने वाले जीवों और पुद्‌गलों की स्थिति में जो सहकारी कारण है, वह अधर्म द्रव्य है। समस्त द्रव्यों के अवगाहन में आकाश द्रव्य और परिवर्तन में काल द्रव्य निमित्त है।

आचार्य विद्यानन्द जैन दर्शन के प्रमुख व्याख्याताओं में से है। उनका तत्वार्थ श्लोक-वार्तिक एवं अष्टसहस्री दर्शन साहित्य की महत्व-पूर्ण कृतियां है। यह माना जाता है कि अष्ट-सहस्री के अध्ययन कर लेने पर अन्य ग्रन्थ पढ़ने की आवश्यकता नहीं। स्वयं विद्यानन्द ने यह प्रकट किया है—

श्रोतव्याष्टसहस्री श्रुतैः किमन्यैः सहस्रसंख्यानैः
विज्ञायेत ययैव हि स्वसमय-परसमय सद्‌भावः ॥

अर्थात् हजारों शास्त्रों को सुनने से क्या, केवल अष्टसहस्री को सुनलेने से स्वसिद्धांत और पर सिद्धांतों का ज्ञान हो जायेगा।

आचार्य सामन्तभद्र दर्शन साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान माने जाते हैं। उनका देवागम स्तोत्र-आप्त-मीमासा, युक्त्यानुशासन एव स्वयम्भू स्तोत्र दर्शन साहित्य की महान् कृतिया है। उनमे अनेकान्त वाद की प्रतिष्ठा दार्शनिक शैली मे की गई है। समन्तभद्र तार्किक थे और स्थान-स्थान पर जाकर शास्त्रार्थ किया करते थे। उनका उन्होंने स्वय ने उल्लेख किया है—

पूव पाटलिपुत्र-मध्य-नगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालव सिन्धु ढक्क विषये काञ्चीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहम् करहाटक बहुभट विद्योत्कट सकट
वादार्थी विचराम्यहन्नरमवे शार्दू ल विक्रीडितम्॥

आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे जीवन और आचार की व्याख्या की है गृहस्थो को पालने योग्य सभी क्रियाओ पर विस्तृत प्रकाश डाला है साथ ही ऐसी कितनी ही बातो को भी निरथक बतलाया है जो कि कभी कल्याणकारी सिद्ध नही होती। वे केवल लोकमूढता है।

आपगा सागर-स्नानमुच्चय सिकताश्मनाम्
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढ निगद्यते॥

अर्थात् जैसे कोई नदी और समुद्र के स्नान को धर्म समझता है कोई मिट्टी और पत्थर के स्तूपाकार देह बनाकर धर्म की इति श्री मानता हैं। कोई पहाड से कूदकर प्राणान्त कर लेने अथवा अग्नि मे शरीर को जला देने मे ही कल्याण मानता है।

आचाय समन्तभद्र सम्यग्दर्शन को अर्थात् दृढ श्रद्धा को मोक्ष मार्ग के लिए प्रमुख साधन मानते हैं क्योकि जिस पुरुष का सन्देह समाप्त नही हुआ है उनकी शुद्धि निर्वस्त्र रहने से न जटाओं से, न कीचड लपेटने से न उपवास करने से, न कठिन भूमि पर शयन करने से और न उकडू बैठने से होती है। इसीलिए आचार्य समन्तभद्र ने कहा है कि चाण्डाल भी यदि सम्यग्दृष्टि है तो वह देवो द्वारा पूजित होता है—

सम्यग्दर्शन सम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्
देवा देव विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्त राजसम्॥

अहिंसा जैन दर्शन का प्रमुख तत्व है। सस्कृत के सभी आचार्यों ने अपने अपने ग्रन्थो में अहिंसा का विस्तृत वर्णन किया है। "अहिंसा-परमोधर्म' का वाक्य वैदिक पुराणो का प्रिय विवेचन रहा है। बारहवीं शताब्दी मे होने वाले आचार्य शुभचन्द्र का ज्ञानार्णव अहिंसा का वर्णन करने वाला प्रमुख ग्रन्थ है। आचाय महोदय ने अहिंसा को जगन्माता कहा है क्योकि अहिंसा समस्त जीवो का परिपालन करने वाली है। अहिंसा ही उत्तम गति और शाश्वत लक्ष्मी है। जगत मे जितने उत्तमोत्तम गुण हैं वे सब इस अहिंसा में ही विद्यमान है।

अहिंसैव जगन्माता अहिंसैवानन्द पद्धति।
अहिंसैव गति साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती॥

आचार्य शुभचन्द्र अहिंसा की महत्ता का वर्णन करते हुए आगे लिखते है—

श्रूयते सर्वशास्त्रेषु सर्वेषु समयेषु च
अहिंसा लक्षणो धर्म तद्विपक्ष च पातकम्।

इसी प्रकार काव्य मे अहिंसा का गुणानुवाद करते हुए लिखा है कि अहिंसा सब धर्मों मे श्रेष्ठ है। सभी भारतीय कवियो ने उसकी महिमा के गीत गाये हैं। सत्य-भाषण तो अहिंसा के बाद आता है-

अहिंसा प्रथमो धर्म सर्वेषामिति सम्मति
ऋषिभिर्बहुधा गीत सुनृत तदनन्तराम॥

जैन दर्शन मे आत्मा को उपयोग लक्षण वाला माना है। वह स्वय ज्ञानमय है। आत्मा शुद्ध दशा मे शुद्ध ज्ञानोपयोगी रूप है और अशुद्ध रागादि युक्त दशा मे वह अशुद्ध ज्ञानोपयोग रूप है—

आत्म ज्ञान स्वय ज्ञान ज्ञानादन्यत् करोति किम्
परभावस्य कर्तात्मा मोहोदय व्यवहारिणाम॥

जैनो ने स्थूल रूप से तो आत्मा के ससारी व मुक्त दो ही स्तर माने हैं किन्तु सूक्ष्म रूप से अनेक स्तर हैं मुक्तावस्था में तो कोई भेद नही है किन्तु ससारी अवस्था मे जीवों के अनेकानेक भेद हैं। गति की अपेक्षा से जीवों के चार भेद हैं मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नारकी। इन्द्रिय अपेक्षा से जीवो के पाच भेद हैं—एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पचेन्द्रिय।

इस प्रकार सस्कृत साहित्य में जैन दर्शन का सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन मिलता है। सभी आचार्यों ने अपनी कृतियो मे जैनदर्शन के वर्णन में रुचि ली है।

———
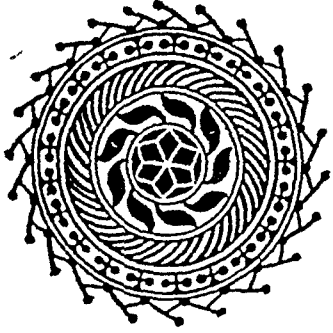
श्रीमद्यशोविजयजी की जीवन झांकी

☐ सुश्री सरोज कोचर

न्याय विशारद, न्यायाचार्य, जैनधर्म के परम प्रभावक महान् दार्शनिक, जैन मुनिवर श्रीमद् यशोविजयजी महाराज विक्रम की सत्रहवी शती में उत्पन्न गुजरात के महान् ज्योतिर्धर थे। भारत भू की पावन वसुन्धरा के गुजरात राज्य में कनोड़ा (कनोडु) गांव था। इसी कनोडा गांव में श्री 'नारायण' नामक धर्मनिष्ठ व्यापारी थे। उनकी पत्नी का नाम सौभाग्यदेवी था। उन्ही सौभाग्य देवी की कुक्षि से शुभ नक्षत्र में महान् तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ। जिसका नाम हर्षोल्लास के साथ जसवन्त कुमार रखा गया। ये जसवन्त कुमार ही आगे जाकर यशोविजय जी हुए।

ये किस वर्ष में, किस मास में, किस दिन उत्पन्न हुए इसके बारे में हमे कोई स्पष्ट विवरण प्राप्त नहीं हो पाया है। लेकिन उपलब्ध साक्षियो, सामग्री एवं 17वी शताब्दी के ही 'सुजसवेली भास' ग्रन्थ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आपका जन्म वि० स० की 17वी शताब्दी मे तथा देहावसान वि० स० 1743 मे हुआ।

पुत्र का जीवन सुसंस्कारवार हो इस अभिलाषा के कारण माता-पिता प्रतिदिन पुत्र को धार्मिक कार्य में साथ ले जाते। कनोड़ा में वि० सम्वत् 1688 में नय विजय जी म० सा का चातुर्मास था। एक बार सब श्री नयविजय जी का वैराग्य-पूर्ण उपदेश श्रवण कर रहे थे। उसका जसवन्त पर अत्यधिक असर हुआ। और उन्होंने अपने माता-पिता के समक्ष अपनी भावना प्रस्तुत की। इधर जौहरी सदृश गुरुवर्य नयविजय जी म० सा० ने जसवन्तकुमार को परखकर उनमें तेजस्विता, विनम्रता, विवेक, बुद्धिमत्ता, धर्मप्रिय आदि गुणों को देखकर महान् नररत्न के रूप में पाया। इस कारण से उन्होने सघ की उपस्थिति में जसवन्त को जैन शासन की सेवा के लिए मांगा। धर्मनिष्ठ माता ने अपना अहोभाग्य समझकर सोचा यदि मेरा पुत्र त्यागी होकर ज्ञानी बन गया तो वह सूर्य सदृश असंख्य घरों को प्रकाशित करेगा। अन्यथा दीपक की भांति मात्र मेरे ही घर को प्रकाशित करेगा। इस प्रकार के महान् विचारों से युक्त माता-पिता ने हर्ष एवं उत्साहपूर्वक गुरु एवं संघ की आज्ञा को शिरोधार्य किया। इस शुभ घड़ी मे जयजयकार का बीजारोपण हुआ। साथ ही नारायण एवं सौभाग्यदेवी के नयन अश्रुपूरित हो गये। लेकिन वे आंसू थे हर्ष के, वे आंसू थे पुत्र विरह की व्यथा के।

गुरु श्री नयविजयजी ने वहां से विहार किया एवं चतुर्मास के लिए पाटण पधारें। तीव्र वैराग्य भावना से जसवन्त कुमार को व्याकुल देखकर उसके माता-पिता जसवन्त को लेकर पाटण पहुंचे। वहां उनकी भागवती दीक्षा धूम धाम से हुई। इनके छोटे भाई पदमसिंह का मन भी

सासारिक भोग विलासो से विरक्त हुआ। उन्होने भी सयम का मार्ग अपनाया। वहा जसवन्त कुमार का नाम यशोविजय एव पदमसिंह का नाम पदम विजय रखा गया।

अब इनका विहार अहमदाबाद की तरफ हुआ। अहमदाबाद मे उनके दिन रात श्रुताभ्यास एव यशोज्ज्वल प्रतिभा को देखकर वहा के श्रेष्ठि रत्न धनजी सूरि ने अत्यन्त प्रभावित होकर गुरु नय विजय जी से कहा—श्री यशोविजयजी ज्ञान के अत्युत्तम पात्र हैं। द्वितीय हेमचन्द्र सूरि बन सकते हैं। आप उन्हे विद्याधाम काशी मे अध्ययनार्थ भेजे। साथ ही अध्ययन के सम्पूर्ण खर्च को श्रेष्ठि जी ने ही वहन किया।

एक बार काशी की विद्वद्सभा में शास्त्रार्थ होने पर वे विजयी हुये। वहा उनका अभूतपूर्व स्वागत किया गया। उनके अगाध पाण्डित्य से प्रभावित होकर काशी नरेश ने यशोविजयजी को 'न्यायविशारद' विरद से सम्मानित किया।

वि स 1718 मे अहमदाबाद मे तपागच्छाधिपति आचार्य श्री विजय देवसूरी से सघ ने प्रार्थना की कि श्री यशोविजय जी महाराज बहुश्रुत विद्वान है और उपाध्याय पद के योग्य हैं अत इन्हें यह पद प्रदान करना चाहिये। तब श्रमद् यशोविजयजी महाराज को उपाध्याय पद से विभूषित किया गया।

उज्वल श्रुतोपासक इन्होने प्राकृत सस्कृत गुजराती और हिन्दी मे विपुल साहित्य सृजन किया। विषय की दृष्टि से न्याय, योग, अध्यात्म दर्शन, आगम, तर्क, अनेकान्तवाद, तत्वज्ञान, साहित्य, अलकार, छन्द, आचार, चरित्र नीति, खण्डन-मण्डन, आदि अनेक विषयो पर मार्मिक महत्वपूर्ण एव प्रौढ लेखनी चलाई है। सर्वग्राही विषयो पर इनकी लेखनी प्रखर प्रतिभा का प्रखर प्रमाण है। शैली की दृष्टि से इनकी कृतिया खण्डनात्मक, प्रतिपादात्मक और समन्वयात्मक है।

निष्कर्षत—विभिन्न विषयो पर विशाल ग्रन्थराशि का अवलोकन करने से इनकी विद्वत्ता की प्रौढता ज्ञात होती है। ये अनुपम विद्वान् प्रखर न्यायवेत्ता, योगवेत्ता, अध्यात्मयोगी, तार्किक शिरोमणि, महान् शास्त्रज्ञ थे। इनका देहावसान वि० स० 1743 मे डभोई (गुजरात) मे हुआ। इस प्रकार ये जैन साहित्य के इतिहास मे प्रथमकोटि के साहित्यकार एव साहित्यसेवी हुए।

> एक उत्पद्यते जन्तुरेक एव विपद्यते ।
> कर्माण्यनुभवत्येक , प्रचितानी भवान्तरे ॥
>
> यह जीव अकेला-असहाय ही उत्पन्न होता है और अकेला ही शरीर छोडकर मरता है तथा पूर्वभवो के इकट्ठे किए कर्मो को यह जीव अकेला भोगता है।

मनोविकारों से मुक्ति ही धर्म

☐ डा. राजेन्द्र कुमार बंसल

अनादिविकृत परम्पराओं एवं विश्वासों के प्रवाह में हमने कुछ न कुछ बाह्य क्रिया करने को ही धर्म मान लिया है। धार्मिक क्रिया करने के अहं में आत्म स्वभाव की सच्चाई दब गई और मन का अहंकार सिर पर चढ़कर बोलने लगा। फलित परिणाम यह हुआ कि धर्म जीवन से कोसों (मील) दूर हो गया। जो हर श्वांस में स्पन्दित होना चाहिये वह सदैव को लुप्त हो गया। यह जीवन की विडम्बना या अभिशाप ही कहा जायेगा कि जिन विकारों एवं कार्यो से हम मुक्त होना चाहते है वही धर्म के पवित्र अनुष्ठान या उपक्रम बन गए। यह एक कटु सत्य है जिसे स्वीकारने के लिए सिंह जैसी हिम्मत आवश्यक है।

चेतन जगत के संदर्भ में जब धर्म की चर्चा की जाती है तो स्पष्ट रूप से एक ही प्रश्न मन में कौंधने लगता है कि जीवात्मा का स्वरूप एवं कार्य क्या है। इस सत्य को समझे बिना हम धर्म की जो भी चर्चा करेंगे, निरर्थक ही होगी।

जीवात्माएं चाहे मुक्त हों या विकारी, उनका एक प्रमुख स्वभाव एवं कार्य है, ज्ञान। ज्ञान के अभाव में चैतन्यत्व की कल्पना गगन कुसुम जैसी है। ज्ञान जब जीवात्माओं का स्वभाव है तो निश्चित ही उनका व्यापार या क्रिया ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ और नहीं होगी। ज्ञान से तात्पर्य अपने एवं पर को तटस्थ रूप में मात्र जानने से है। जब जीवात्माएं अपने स्वरूप को, अपने मनोभावों एवं वासनाओं को निर्वेद, निर्विकार या तटस्थ भाव से जानने लगी है तो उनके ज्ञान का यह व्यापार ही धर्म स्वरूप कहलाता है क्योंकि ज्ञान ही जीवात्मा का धर्म एवं प्रकृति है। जब जीवात्मा पूर्णत: मनोविकारो विहीन पवित्र हो जाता है तब वह शुद्ध पूर्ण धर्ममय होना कहा जाता है।

प्रश्न यह है कि कौन सा ज्ञान धर्ममय होता है और कौनसा अधर्ममय। जब हमारा ज्ञान राग एवं द्वेष आदि मनोविकारों में तन्मय रहता है तब ऐसा ज्ञान धर्म रूप न होकर अधर्म रूप होता है। जिसका स्वभाव है वह उसी प्रकार रहे, यही उसका धर्म है। इस दृष्टि से राग, द्वेष रहित शुद्ध ज्ञान स्वभावी आत्मा अपने शुद्ध ज्ञान स्वभाव में लीन रहे, तन्मय रहे, यही उसका धर्म होगा। ज्ञान के अलावा आत्मा के अन्य रागात्मक व्यापार सब अधर्म की श्रेणी में आवेंगे।

इससे यह बात साफ होती है कि मनोविकारों की उत्पत्ति एवं उनके प्रति आसक्ति ही धर्म है क्योंकि ऐसे मनोविकार एवं उनके अनेक कारण ज्ञान स्वभावी आत्मा की प्रकृति के प्रतिकूल होते हैं। अनादि अज्ञान एवं विषय वासना के कारण हमने इन मनोविकारों को अपना स्वभाव मान लिया है। इस भ्रांत धारणा के कारण हम अपने स्वभाव से दूर भटक गये हैं।

प्रश्न यह है कि क्या हम मनोविकारों के कूप में रहकर कभी उनसे मुक्त होने की कल्पना भी

कर सकते हैं। प्रश्न सरल है किन्तु जटिलता एव दुरहता लिये हैं। मन की दौड पर लगाम लगाना सहज सरल नही है, फिरमनोविकारो से मुक्ति पाना तो और भी कठिन है। तो क्या मानव जीवन इनके द्व द्व मे ही बेकार चला जायगा।

अध्यात्मवाद हमारी समस्या सुलझाने मे सहायता करता है और हमे एक दिव्य दृष्टि देता है। यह दृष्टि है मनोविकारो से रहित शुद्ध एव पवित्र स्वसत्ता की यथार्थ एव सही स्वीकृति। यदि हम अपने शुद्ध ज्ञान स्वभाव की सत्ता स्वीकार लें, अनुभव करलें और उनमे तन्मय हो जावे तो ऐसी दशा मे अनादि मनोविकारो की पकड ढीली पड जाती है।

अभी हम धर्म के नाम पर मनोविकारो के रस्से को नाज रहे हैं, जवकि आवश्यक्ता उसकी पकड ढीली कर उसे तोडने की है। मनोविकारो के स्वामित्व पर से जैसे ही दृष्टि हट कर आत्मा के ज्ञान स्वभाव की ओर लगती है वैसे ही हम तनाव चिंता एव विकल्प जालो से रहित होकर अनुपम शाति रस का स्वाद लेने लगते हैं। यही से परम आनन्द की प्राप्ति की शुरुआत होती है। आवश्यकता आत्म स्वभाव की सही एव यथार्थ सत्ता स्वीकारने एव स्वसत्ता पर विश्वास करने की है। यही जीवन का एक मात्र सत्य है जो कथन एव तर्क वितर्क का विषय न होकर अनुभव करने का है। इस सत्य की प्रतीति एव अनुभव ही जीवन का सबसे बडा चमत्कार है जो हमे उसे प्राप्तव्य की ओर ले जाता है जिसके लिए अनादि से हम तडफ रहे हैं। आत्म शक्ति का उपयोग मनोविकारो की पुष्टि के व्यापार मे न होकर निर्मल ज्ञान स्वभाव की ओर हो तो जीवन मे अमृत की वर्षा होने लगे। यह अमृत मात्र उन्हे हृदयो मे बरसेगा जो इस महासत्य को जानेगा, पहिचानेगा और मानेगा कि शुद्ध ज्ञान के अलावा मनोविकार या अन्य जड जगत कुछ भी मेरे नहीं है, न मैं उनका कर्ता हू और न स्वामी ही। इस कटु सत्य को समझने एव मानने मे जितना अधिक समय लगेगा उतनी ही विकृति स्वभाव मे बनती जावेगी और हम दुखी होते रहेगे।

तो आइये जड जगत के चमत्कार वाह्य वैभव की कीर्ति एव भोग विलास आदि के अनादि मनोभावो को भूलकर हम एक वार अपनी चतन्य सत्ता के अनुपम स्वभाव को समझें एव उस पर विश्वास करें। साथ ही धर्म के नाम पर ओढी वाह्य विकृतियो एव मनोविकारो का परित्याग कर आत्म स्वभाव की प्राप्ति एव आत्म रमण का प्रयास करें। ऐसे उपक्रम से क्रमश व्यक्ति एव समाज का कल्याण एव अभ्युदय सम्भव है। इसी से परमशाति एव आनन्द की प्राप्ति होगी जीवन मे स महासत्य की पहिचान एव प्रतीति ही अपने आप की पहिचान एव प्रतीति है जो जगत के सर्व दुखो एव विकृतियो के जीवन को उबारने मे सक्षम है। वस्तुत यह क्रिया ही धर्म एव धार्मिक वृत्ति का लक्षण है।

❋ सच्चे गुरु महाराज ❋

● सुरेशचंद जैन

सच्चे गुरु महाराज किसी भी जाति या समाज की संकुचित सीमा में बन्धे नहीं होते है। वे सम्पूर्ण विश्व की सम्पदा होते है। संसार में जितने भी सम्प्रदाय या मतवाद है। सभी परमात्मा के पावन पाद-पद्मों में पहुंचाने वाली पगडण्डियां है, सबका लक्ष्य एक ही है। जो सम्पूर्ण विश्व के पथ-प्रदर्शक होते है। जो आत्मा विश्व आत्मा मे अपने आप को समाहित कर चुके है वे भले ही किसी भी सम्प्रदाय के हों जनमानस उन्हें सदगुरु की उपाधि से विभूषित कर ही लेता है।

जैन धर्म सिद्धांत के अनुसार सच्चे गुरु महाराज के आचार-विचार एवं नियम 5 सिद्धांतो पर चलने वाले होने चाहिये।

1. अहिंसा
2. सत्य
3. अस्तेय
4. अपरिग्रह
5. ब्रह्मचर्य

इस प्रकार सच्चे गुरु महाराज पंच महाव्रत-धारी होने चाहिए और होते है। गुरु महाराज सदैव पैदल विहार करते हैं। मार्गो में विहार करते समय अनेक कठिनाइयों का सामना करते हैं। भय से डरते नही है। गुरु महाराज श्रावकों एवं श्राविकाओ को धर्म के प्रति जागरूक एवं मार्गदर्शन करते है। धर्म के प्रति पूर्ण रूप से श्रद्धा रखकर अपना मोक्ष का मार्ग खोजते है।

गुरु की वाणी बड़ी मधुर होती है। गुरु महाराज बड़े संयमी होते है। गुरु महाराज धर्म आराधना, तपस्याये आदि क्रियाओं को करके अपना मोक्ष मार्ग अपनाते है। गुरु महाराज करुणा-मय एवं दयावान होते है। गुरुमहाराज क्रोध लोभ मोह, माया आदि कषायों को अपने वश में रखते है। हर जीव के प्रति करुणामय भाव रखते हैं। गुरू महाराज हमेशा उबाले हुए गर्म पानी का प्रयोग करते है। गुरू महाराज मार्गों में विचरण करते समय जमीन पर जीवों से बचकर चलते हैं। जिससे जीव हिंसा न हो। गुरू महाराज का जीवन बड़ा त्यागमय होता है।

एक दृष्टान्त याद आता हैं:—

एक समय की बात है कि गुरू महाराज बिया-बान जंगल में होकर विचरण कर रहे थे। अचानक उसी समय कुछ डकैत या लुटेरे वहां आ गये थे। लुटेरों ने गुरु महाराज से पूछा, आप कहां जा रहे हो? गुरुमहाराज ने उत्तर दिया कि हम आगे आने वाले गांव में जा रहे हैं। लुटेरों ने

गुरु महाराज को लूटना चाहा। लेकिन गुरु महाराज अपने धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखने वाले थे। वे 'महामन्त्र नवकार मन्त्र' का जाप कर रहे थे। उसी समय लुटेरों के पैर जमीन पर ही जम गये। आगे बढ़ने से रुक गये। लुटेरों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस आश्चर्य को देखकर लुटेरों ने वहीं पर अपना डकैती रूप छोड़ दिया और महाराज साहब के पैरों में गिर पड़े और कहा महाराज हमें भी नवकार मन्त्र सुनाओ। हम भी आप के साथ विहार करेंगे।" इस प्रकार वे लुटेरे जैन धर्म के मानने वाले श्रावक बने। उनकी गिनती श्रेष्ठ श्रावकों में होने लगी। उन लुटेरों की जैन धर्म के प्रति श्रद्धा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी।

इस प्रकार गुरु महाराज की वाणी केवल जैन समाज के लिए ही नहीं, अपितु समूचे साधकों एवं जिज्ञासुओं के लिए मार्गदर्शन करने वाली होती है। गुरु महाराज अन्धेरे से प्रकाश की ओर लाते हैं। जिस प्रकार एक जला हुआ दीपक दूसरे को प्रकाश देकर अपने नीचे अन्धेरा रखता है। उसी प्रकार गुरुमहाराज अनेक कष्ट सहकर तप, त्याग से हमको मार्ग-दर्शन करते हैं। अधर्म से धर्म की ओर लाने वाले ही सच्चे गुरु हैं। जो कि विश्व में पूजनीय हैं।

इसलिए सभी धर्म प्रेमियों को गुरु महाराज की निश्रा में रहकर अच्छी बातें ग्रहण करनी चाहिए। जिससे हम सभी का जीवन उज्ज्वल बनें।

० ०

रात्रि भोजन त्याज्य है—

अस्तं गते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नं मांस समं प्रोक्तं, मार्कण्डेय महर्षिणा॥

मार्कण्डेय पुराण में मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है—

सूर्यास्त के पश्चात् जल पीना तो वह रुधिर के समान है और अन्न खाना मांस के समान है।

कलिकाल से प्रभावित भारत की स्थिति

—श्री सुरेशचंद पल्लीवाल

फिरा जमाना-फिरा जमाना, लोगों ध्यान लगाना।
क्या था भारत ? क्या है अब ? और क्या होगा न ठिकाना ॥

छात्र विदेशी भारत आते ऊंची डिग्री पाने,
आज विदेशों भारत जाता, डिग्री को अपनाने.

हो ! पता नहीं भारतीयों का दिल, कैसा भूत फिराना।
फिरा जमाना...............

सादा खाना सादा पीना, रहन सहन भी सादा,
महासचिव कुटिया में रहते खर्च न करते ज्यादा,

हो ! आज मन्त्री लोगों का खर्चा, जाता नहीं बखाना।
फिरा जमाना...............

एक पतिव्रत प्रण से होता, आगे ब्याह सुहाना,
आज तलाकों की हलचल का बड़ा हुआ पैमाना,
हो ! ब्रह्मचर्य की घट रही महिमा, कहना सोलह आना।
फिरा जमाना...............

भ्रातृ प्रेम अद्भुत था भाई जो कोई रहने आते,
ईंटें और रुपया देकर अपने तुल्य बनाते,

हो ! लूट लूट कर आज, भाइयो को चाहते हैं खाना।
फिरा जमाना...............

बाजारों में ढेर मोतियों के फिर भी नहीं चोरी
नहीं छोड़ते आज भारतीय जूतों की भी जोड़ी

हो ! सही प्रमाणिकता तो घनमुनि मानों हुई रवाना।
फिरा जमाना-फिरा जमाना लोगों ध्यान लगाना ॥

इतने व्यापक एवं विविध विषयों पर उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखकर वास्तव मे उन्होंने अपने आचार्यत्व को चरितार्थ कर हेम सी निर्मल प्रतिभा का उदाहरण दिया है।

नि सन्देह हेमचन्द्र अलौकिक विभा से परिपूर्ण थे। इनका सम्पूर्ण साहित्य शान्त रस से आप्लावित है। उनमे आध्यात्मिकता का स्वर मुखरित है। इनका ज्ञान गम्भीर और विस्तृत था। इसी कारण इनकी रचनाए मर्मभेदी, गहरी एवं सूक्ष्म विचारधारा से युक्त है। इनके श्रुतज्ञान वैभव को पाकर सम्पूर्ण गुजरात हर्षित हो गया। इन्होंने साढे तीन करोड से भी अधिक श्लोको की रचना कर मां सरस्वती के भण्डार को अक्षयनिधि स भर दिया। साथ ही कुमार जैसे गुर्जर शासक को श्रावकव्रत दिलाकर जैन शासन को अत्युत्तम शिखर पर चढ़ाया।

इनका सयम साधना और साहित्य साधना का दीप अविरल प्रज्वलित रहा। जन जन को मार्ग दर्शन मिलता रहा। 83 वर्ष की आयु मे उनका देहावसान पाटण मे हुआ। इस प्रकार हेमचन्द्राचार्य का युग जैन धर्म के महान् उत्कर्ष का युग था।

☐

मैं कौन हू ?

⊖ मुनि भुवन हर्ष विजयजी म. सा.

एक साधु के पास तीन मित्र पहु चे। उन्हे साधना करनी थी। साधु ने पूछा "तू कौन है ?" पहले ने कहा "मैं? मैं तो राजपुत्र हू, राजपुत्र। ५० गाव का मालिक भी हू।" "इतनाही"। साधुने दूसरे से पूछा "तू कौन है ?" मैं श्रेष्ठी पुत्र हू। मेरे पिताजी क्रोडाधिपति हैं। उनका इकलोता पुत्र हू। मेरा स्थान घर मे अद्वितीय है।"

साधु ने तीसरे से पूछा अच्छा भाई! और तुम? तुम कौन हो ?"

तीसरे ने वन्दन करके नम्रता से कहा, "प्रभो! मुझे यो मालुम होता कि 'मैं कौन हू ?' तब आपके पास आपका पाव चूमने को क्यो आता ? आप ही बताइए मैं क्या हू ? मैं कौन हू ? क्योंकि मैं अपने आपको भूल गया हू। सब लोगो के साथ मैं भी नाम और धाम मे फसा हू।"

साधु समझा, तीन मे यही साधक है। शान्ति मे अपने आपको ढूढने को आया है। यो दो सिर्फ नाम और धामवाले है। एक के पास पैसेका अह है, दूसरे के पास प्रतिष्ठा का। लेकिन ये दो अपने अहम् के ऊपर के भाग मे अग्नितत्व जैसा 'र्' (c) लगाकर अपने अहम को जला दें तो अर्हम्, याने अपने को पहचान सकते हैं। लेकिन पदवी और प्रतिष्ठा मे ही प्रसन्नता मे रहता मानव अपनी प्रभुता को कैसे समझे ?

वाकर बच्चा लाख, लाखे बियारा।
सिहण बच्चु एक, एके हजारा॥

— + —

लघु–कथायें

—मुनि श्री भुवन हर्ष विजयजी मा० सा०

मैं फंस गया ?

सारे संसार में पिछले कितने ही सालों तक शैतान का राज चलता रहा। अब तो वह बूढ़ा हो चुका है। लेकिन उसके तीन पुत्र है। उसको हुआ कि इन तीनों में से कौन मेरा नाम और काम बढ़ाएगा। देखो भाई हमारे गुरु 'शयतान' को भी नाम बढ़ाने की दिलचस्पी लगी है तो हमको क्यो न लगें। अपना सच्चा वारिसदार नक्की करने के लिए उसने तीनों पुत्रों को अपने कार्यक्षेत्र मनुष्यलोक में भेजे। तीनों को बोल दिया कि जो अच्छे से अच्छी शयतानीयत करेगा उसको मेरा सच्चा वारिसदार मान लूंगा।

तीनों यहां आ गए और अपना काम करके चले गये।

पहले ने पिताजी को कहा, "मैंने घर की शांति तोड़ डाली। मात-पिता की भक्ति पति-पत्नी की एकरूपतादि में भेद पैदा किया। संसार प्रेम से चलता था वहां मैने अपने स्वार्थ के लिए अनुकूल होने की वृत्ति की स्थापना की।"

दूसरे ने कहा, "मैंने विद्याधाम में जाकर वहां की सारी व्यवस्था तोड़ डाली। विद्यार्थी और गुरुओं के बीच प्रेम था, विनय था, इसको नष्ट किया। विद्यार्थियों को कहा, "तुम गुरुओं का मान विनयादि क्यों करते हो ? वो तो तुम को अपनी रोटी के लिए पढ़ाते हैं।" गुरुओं को कहा, "तुम शिष्यों को पुत्रवत क्यों समझते हो ? वे सब पढ़ने के बाद तुमको अपना मुंह भी नहीं दिखायेंगे।"

तीसरे ने कहा, "मैने लोगो मे देखा कि वो परोपकारपरायण है। दूसरे के दुःख दूर करते हैं। मैने इन लोगों से पूछा, "तुमको क्या मिलता है इस प्रवृत्ति से ? कुछ न मिले तो बड़ाई तो मिलनी ही चाहिए न ? ऐसे मैंने लोगों में भेद का दुःख खड़ा किया।"

सारे संसार का हर एक व्यक्ति इन तीन शैतान के पुत्रों में से कम से कम एक का बोला हुआ काम कभी न कभी करता ही है।! मैं तो फंस गया हूं। इन तीनों में से किसी की बात में ?

माटी कहे कुम्हार को तू क्यों रूंदे मोय
एक दिन ऐसा आयेगा मैं रौंदूंगी तोय

□

मानव-धर्म

—सुश्री अ जना सिंघी

अरे वाह ! कैसा अजीव प्रश्न है, आप प्रश्न करेंगे क्या ? अभी सोचने का समय नहीं है लीजिये प्रस्तुत है आपका आश्चर्यजनक प्रश्न। जैन धर्म क्या है अथवा धर्म किसका नाम है। भगवान महावीर का कहना है कि अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है। अहिंसा किसका नाम है केवल मात्र किसी जीव की हत्या न करना ही अहिंसा नहीं है वरन् किसी का दिल न दुखाना, परोपकारी होना, कटु सत्य न बोलना ही धर्म है अहिंसा है। सत्य अवश्य बोलो लेकिन कटु नहीं जिससे किसी प्राणीमात्र का दिल दुखे।

आप जन्म को नहीं वरन् कर्म को महत्व दो। आपके मात्र जन्म लेने से ही अच्छी गति अथवा मोक्ष प्राप्त नहीं होगा जब तक कि आप अच्छा अथवा सुकर्म नहीं करेंगे, तो फिर आप जन्म को महत्त्व क्यों देते है ? अच्छे कुल मे जन्म लेने के बाद भी आप चुपके-चुपके, चोरी-चोरी गलत मार्ग को अपनाते हो, कुकर्म करते हो तब क्या आप जैन या जिस कुल मे जन्म लिया है उसके लायक हो जरा सोचो, अपने दिल मे विचार करो, चिन्तन करो, कोई आपको देख नहीं रहा है, निडर रहो। फिर बताओ आप कौन हैं ? फिर जाति से घृणा क्यो करते हो, जिस इन्सान में इन्सानियत निहित है, जैन धर्म के लक्षण मौजूद हैं, दया-भाव, अहिंसा, परोपकारिता, नम्रता है वही जैन कहलाने के योग्य है।

जिस इन्सान ने ये रत्न पा लिए हैं वही जैन है। जिसे आप स्वीकारते नहीं है क्यो ? आज भिन्न-भिन्न राज्यों में राष्ट्रों में जैन धर्म अपना रहे हैं। लेकिन हमारा समाज स्वीकारता नहीं है क्यो ? क्योंकि उन्होंने जन्म लेकर ही पाप किया है या अपना धर्म, अपना समाज छोड़कर जैन समाज अपनाना चाहता है। यही उसका दोष है बोलो है ना ? परन्तु क्यों ? भगवान महावीर ने यह तो नहीं कहा था जन्म और कर्म में भेद करें। यदि आप मे ये विभेद नीति है तो मैं कहूंगी कि आप जैन कहलाने के लायक नहीं है। भगवान महावीर ने कोई जाति वर्ग नही बनाया इसके निर्माता तो आप ही हैं फिर आप भगवान को बीच में क्यो लाते हैं। जब जैन धर्म को अपनाने वाले को हमारा समाज ठुकरा देगा तो फिर वो जायेगा कहाँ ?

जब कभी विवाह सम्बन्ध का प्रश्न उठता है तब आप कहते हैं कि इस परिवार में हमारा सबंध (विवाह सबंधी) सभव नहीं है क्योंकि या तो वह हमारी जाति अथवा धर्म का नहीं है या फिर आप अप्रत्यक्ष रूप से अपनी कमजोरी दिखाते हैं और कहते हैं हमे ये–ये वस्तुयें चाहिये क्योंकि आप मे कमाने की क्षमता नहीं है। जरा सोचो ! आप इतने हीन क्यो बनते हैं बिना दहेज विवाह करने मे आपकी महानता होगी, आपका नाम होगा साथ ही जीवन में आपको इतना बड़ा धर्म का मौका प्राप्त हो रहा है किसी अबला अथवा परिवार को जिन्दगी देने का। अब देर न कीजिए और प्रण कीजिए कि हम बिना दहेज के विवाह कर अपना जीवन सार्थक बनायेंगे। अब हम प्रत्येक अबला की आखों में दर्द के आसू नहीं बल्कि खुशी के आसू (रत्न) देखेंगे। इसके साथ ही वास्तविक जैन समाज का निर्माण करेंगे।

●

नीर-क्षीर

—संकलक श्रीमती शान्ती देवी लोढा

1. दम्भ का अन्त सदैव नाश होता है और अहंकारी आत्मा सदैव पतित होती है
—बाइबिल

2. यदि मैं अपने चरित्र की परवाह करूंगा तो मेरी कीर्ति स्वयं अपनी परवाह करेगी
—मूडी

3. चरित्र एक श्वेत कागज के समान है। एक बार कलंकित होने पर इसका पूर्ववत् उज्ज्वल होना कठिन होता है। —हावेज

4. हम जिस चरित्र का निर्माण करते हैं, वह हमारे साथ भविष्य में भी रहेगा जब तक कि हम ईश्वर का साक्षात्कार कर उसमें लीन नहीं हो जाते। —डा० राधाकृष्णन्

5. जितना अधिक जीवित रहना चाहते हो रहो, किन्तु स्मरण रखो कि जीवन के प्रारम्भिक 20 वर्ष जीवन की अधिकांश अवधि है।
—साऊदी

6. धर्म अन्तः प्रकृति है, वही सारी वस्तुओं का ध्रुव सत्य है। धर्म ही वह चरम लक्ष्य है जो हमारे अन्दर काम करना है। —रवीन्द्र

7. कानों से ग्रहण किए गए आहार को पचने का भी अवकाश दो।

8. तलवार की अपेक्षा कलम की ताकत अधिक होती है।

9. धन राष्ट्र का जीवन रक्त है। —स्विफ्ट

10. धन मनुष्य के दुःख का कारण है—वेदव्यास

11. जैन ग्रन्थ में दीपावली का नाम नन्दीश्वर पर्व मिलता है।

12. यदि आप कर्त्तव्यों का पालन करेंगे तो अधिकार छाया की भांति आपका अनुसरण करेंगे।

13. बुद्धिमान आदमी जल्दी समझ जाता है फिर भी देर तक सुनता है।

14. दक्षता एक प्रतिशत प्रतिभा से प्राप्त होती है, 99 प्रतिशत पसीना बहाने से।
—टामस आलवा एडिसन

15. सफलता प्राप्ति के लिए तुम्हें कठोर काम करने चाहिए, ऐसे काम जो दूसरे न करे या न कर सकें। —हेनरी वी० द० पांत

16. अपने काम से कभी सन्तोष न करो। अपनी ड्यूटी से अधिक करो, जिस घोड़े की गर्दन आगे रहती है, वही दौड़ में जीतता है।
—एण्ड फार्नेजो

17. अभ्यास से ही मनुष्य सीखता है न कि सोते हुए।
— ऋग्वेद

18. अतिथि-सत्कार से मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है।
—बाइबिल

19 जो क्रोध को स्वयं झेल लेता है, वह दूसरों के क्रोध से बच जाता है। —सुकरात

20 जीव मात्र की अहिंसा स्वर्ग को देने वाली है। —शंकराचार्य

21 नम्रता महान व्यक्ति की पहली पहचान है। —रस्किन

22 आपत्तियां हमें आत्मज्ञान कराती हैं। —जवाहर लाल नेहरू

23 त्याग के बिना उन्नति नहीं हो सकती। —जेम्स एलन

24 दान का मतलब फेंकना नहीं बल्कि बोना है। —विनोबा

25 पापी से नहीं पाप से घृणा करो।

26 आसक्ति का त्याग करके, क्रोध को जीतकर, स्वल्पाहारी और जितेंद्रिय हो। —मार्कण्डेय पुराण

27 अवगुण अपने देखो, गुण दूसरों के।

28 किसी को कटु वचन न बोलो ताकि तुम्हारे साथ कोई कटु व्यवहार न कर सके। —बुद्ध

29 दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम अपने साथ चाहते हो।

30 विद्या वही है जो बुरे मार्ग से हटा दे।

31 जैसे हम द्वेष से जगत को नरक सदृश बना देते हैं, ऐसे ही उसे प्रेम से स्वर्ग के समान बना सकते हैं।

32 सैकड़ों हाथों से इकट्ठा करो और हजार हाथों से बांटो। अथर्ववेद

33 झूठ की हार ऐसी ही निश्चित है जैसे रात के बाद दिन।

34 यह मनुष्य उसी तरह अदृश्य हो जायेगा जैसे सुबह का तारा देखते-देखते गायब हो जाता है।

35 जैसे पानी को कपड़े से छानकर पीते हैं वैसे ही शब्द को सत्य से छानकर बोलो।

36 शिक्षक एक मोमबत्ती के समान है जो स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है।

37 आज के कष्टों का सामना करने वाले के पास आगामी कल के कष्ट आते हुए घबराते हैं। —अज्ञात

38 दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है, केवल उतना ही याद रखती है जितने से उसका स्वार्थ सधता है।

39 कच्चे घड़े को फूटते देर नहीं लगती वैसे ही इस शरीर को नष्ट होते देर नहीं लगती।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो॥

—क्रोध प्रीति का और मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है। लोभ सब सद्गुणों का नाश करता है।

विविध-बोध

—श्री राजमल सिंधी

(1) कर्म की प्रधानता—

प्राणियों को प्राण छोड़ते समय बहुत दुख होता है, क्योंकि उस समय असह्य वेदना होती है। मरने के समय की वेदना जन्म की वेदना से भी बहुत अधिक होती है। जन्म के समय में जीव महान कष्ट सहता है। कई जीव तो उस समय प्राण ही त्याग देते है। शास्त्रकार जन्म-दुख, जरा—दुख और मरण-दुख का बार 2 उच्चारण करते हैं। इनमें भी मरने का दुख सबसे अधिक है। यह सब केवल कर्म की लीला है। जो बुरे कर्म किए जाएंगे, उनका परिणाम भोगना ही पड़ेगा। किए गए कर्मो से कोई छुटकारा नहीं पा सकता।

दृष्टान्त रूप भगवान रामचन्द्रजी को ही लीजिए। उनको भी कर्म के अनुसार राजगद्दी पर बैठने के मुहूर्त के समय में ही वनवास जाना पड़ा। कर्म ने राजा हरिश्चन्द्र की कैसी हालत की। सुतारा देवी को बेचनी पड़ी, कुटुम्ब का विरह हुआ, पुत्र का मरण हुआ, अयोध्या नगरी का त्याग करना पड़ा, नीच के घर में पानी भरना पड़ा। यह सब कर्म का ही फल है। लोग कहते हैं कि 'ईश्वर की ऐसी ही मरजी थी।" किन्तु हमे यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि यह ईश्वर की मरजी नहीं है। यह तो अपने ही किए हुए कर्मो का फल है। यह तो सोचिये कि, ईश्वर क्यों किसी का भला-बुरा करेगा। जो ईश्वर संसार से विरक्त हो गया, जिसने मोक्ष प्राप्त कर लिया भला फिर वह सांसारिक झमेलों में क्यों पड़ेगा। वह किसी का भला या बुरा करने के लिए अपने को रागद्वेष में क्यों लिपटायेगा। उसने तो अपने जीवन काल में ही राग-द्वेष को समाप्त कर दिया—तभी वह ईश्वर हुआ। बिना राग-द्वेष से विरक्त हुए वह ईश्वर बन ही नहीं सकता था।

कर्म जो कार्य करता है वह अन्य कोई नही कर सकता। कर्म सब प्रकार के नाच नचाता है। धर्म संसार के नाटक का सूत्रधार है। इस संसार रूपी रंगमण्डप में सभी जीव पात्र के रूप में है। कर्म इन पात्रों द्वारा चौरासी लाख भिन्न-भिन्न नाटक करवाता है। भगवान महावीर को भी अपने मनुष्य जीवन मे कर्म भोगने पड़े। कर्म धर्म को अधर्म के रूप में, और अधर्म को धर्म के रूप में समझाता है और वास्तविक वस्तु को भुला देता है।

इस जगत में जीव अपने किये हुए कर्मो के अनुसार चौरासी लाख जीवयोनि में परिभ्रमण करते है। सभी दर्शनकार कर्म और कर्म के फल को मानते हैं। जैसा बीज बोया जाएगा, वैसा ही फल मिलेगा। जौ बोने से जौ ही मिलेगा, न कि गेहूं। जैसा कर्म किया जावेगा वैसा ही फल मिलेगा। अतः कर्म करते समय विचारशील होना चाहिए। शास्त्रकार समझाते है कि "हे जीव जरा स्वहित का विचार कर जो शुभ या अशुभ कर्म करेगा वे भोगने ही पड़ेंगे। इसमें कोई अन्य भागी

दार नहीं होगा। पाप मे एकत्रित किया हुआ धन तो सभी लोग लेने को तैयार हो जायेंगे, किन्तु पाप–जन्य दुख लेने को कोई तैयार नही होगा। इस असार ससार मे जीव अपने जीवन को पाप-कर्म से दुखमय बनाता है। यदि इस जीवन को ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी रत्नत्रय से ओत-प्रोत बनाया जाय तो कल्याण मार्ग की प्राप्ति मे देर नही लगेगी।

किन्तु जब तक मोह सिर पर बैठा हुआ होगा, तब तक जीव मुक्ति मार्ग की ओर नही बढ सकेगा माना कि ससार मे रहने वाले जीव ससार को ठीक नही मानते, किन्तु फिर भी मोह के कारण जीव सांसारिक कुकार्य करते हुए नही डरता। मोह के वश मे हुए जीव को कोई कुकम करना अनुपयुक्त नही लगता। अत मनुष्य को शुभ कर्म करके तथा रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ से दूर रहकर, मुक्ति मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहिये।

(2) सम्यग्ज्ञान की आवश्यकता

कई मनुष्य परिग्रह को त्यागकर ससार छोड देते हैं, साधु बन जाते हैं। यह ठीक है, किन्तु यदि वे सही ज्ञान, दर्शन और चारित्र को नहीं जानते, तो वे मुक्ति नही प्राप्त कर सकते। सम्यग्ज्ञान के बिना साधु की भी मुक्ति नही हो सकती। जो कपटी नहीं होगा वही मुक्ति प्राप्त कर सकेगा। जो कषाय युक्त होगा–अर्थात जो क्रोध मान, माया लोभ मे लिप्त होगा, वह मुक्ति प्राप्त नही कर सकेगा। यही सही ज्ञान है–यही सम्यकज्ञान है। कोई मनुष्य कितना ही तप करले किन्तु यदि वह कषाय को नहीं छोडेगा, तो वह मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकेगा। अत सरल प्रकृति और सम्यकज्ञान के बिना मुक्ति पाना असम्भव है।

सासारिक तुच्छ सुख की आशा से जो कष्ट सहे जाते हैं उसके बजाय ज्ञान, दर्शन चारित्र की वृद्धि के लिए ही कष्टो को सहन करने से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। मनुष्यो को चाहिये कि वे कष्टो को समभाव से सहन करें और दुख का भाव न रखें। कर्माधीन जीवो को प्रतिपल दुख रहता है। मनुष्य, देव, तिर्यंच और नरक के जीव अनेक कष्ट सहते हैं। उन कष्टो को समता सहित ज्ञान पूवक सहन करना चाहिये–यही सम्यग्ज्ञान है।

(3) तप की प्रबलता—

जिस प्रकार दीवार पर लगा हुआ चूना गिर जाने से दीवार जीर्ण हो जाती है, उसी प्रकार अनशन आदि बाह्य तप से देह पतली पडती है और कर्म भी पतले पडते हैं। तप के बिना ब्रह्मचर्य की यथोचित परिशुद्धि नही हो सकती। तप से शरीर और मन के रोगियों को शांति मिलती है। शरीर की शांति के लिए बडे से बडे डाक्टर भी उपवास करने की राय देते है। अतएव शरीर की रक्षा के लिए भी तप आवश्यक है। धार्मिक दृष्टि से सोचा जाय तो विचार आवेगा कि जिस शरीर के लिए बडे-बडे अनर्थ किए जाते हैं, वह शरीर यही पडा रहेगा और आत्मा शरीर के लिए अनर्थ करने के कारण, परलोक मे जाकर दुखी बनेगी। शरीर ही पाप का कारण है। यदि कोई मनुष्य किसी से ठगा जावे तो वह मनुष्य उस ठग का विश्वास नही करेगा। तो फिर भवोभव मे ठगने वाले शरीर का विश्वास क्यो किया जाता है। यह शरीर बिलकुल विश्वास करने योग्य नहीं है क्योंकि कौन जाने किस समय और किस स्थिति मे यह दुर्जन शरीर आत्मा रूपी सज्जन को छोड दे। अत तपस्या से शरीर रूपी दुर्जन को दुर्बल बनाना चाहिये। तपस्या बहुत दृढता और शांति पूर्वक, राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया लोभ को दूर रखकर तथा सरल स्वभाव से करनी चाहिये। तभी वह फलीभूत होती है। इस प्रकार तप करने से ही कर्मों का क्षय हो सकता है। जो गृहस्थ अथवा मुनि मुक्ति गमन योग्य विविध जिनोक्त क्रियाएं करते हैं और यथाशक्ति तप करते हैं वे किसी प्रकार के उपसर्ग (कष्ट) से धम भ्रष्ट नही हो सकते।

(4) ऋतुवंती नारी का कर्त्तव्य--

ऋतुवती नारी के व्यवहार के विषय में जैन धर्म के ठाणांग सूत्र में वर्णन किया गया है। यह वर्णन भगवान महावीर के उपदेश के आधार पर है। ऋतु के समय में स्त्री को घर का कोई कार्य नही करना चाहिये, जैसे कूटना, पीसना, पानी भरना, भोजन बनाना, भोजन परोसना इत्यादि ऐसा करने से खटरस के दोष से इन वस्तुओं का स्वाद विगड जाता है। पापड़ वड़ी इत्यादि को तो छुने या देखने मात्र से उनका स्वाद बिगड़ जाता है और रग पलट जाता है। खाने पीने की चीजों को स्पर्श करना भी अनुचित है क्योंकि ऋतुमती स्त्रियों के स्पर्श के बाद ये वस्तुएं मुनिगण के उपयोग में नहीं आ सकती, और आवे तो भारी आशातना होती है। पुरुषों के साथ स्पर्श करते हुए वैठना या भोजन करना भी अनुचित है क्योंकि इससे दुर्गति प्राप्त होती है और रोग होते है। इस समय, सामायिक प्रतिक्रमण सूत्र, का वाचन या उच्चारण, भगवान की मूर्ति के दर्शन अथवा तस्वीर के दर्शन भी अनुचित है। ऐसा करने से भव भ्रमण होता है, चांडाल के यहां जन्म होता है और परभव में कई वार सांप, छछून्दर विच्छू, इत्यादि का भव होता है।

अतः जिस दिन जिस समय स्त्री राजस्वला हुई हो, उसके चौथे दिन उसी समय नहाना चाहिए और नहाने के पश्चात् ही सामान्य कार्य करना चाहिए। इन दिनों में शरीर की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिये और शरीर को गर्म रखना चाहिए। ठड़े पदार्थों का सेवन या ठंडे पानी का स्पर्श नहीं करना चाहिये। इन दिनों में उपरोक्त कार्यो के अतिरिक्त कपड़े सीना, बुनना, पत्र लिखना, अखबार या पुस्तक पढ़ना, घूमना, मुसाफिरी करना भी अनुचित है कागज के स्पर्श से ज्ञान की आशातना होती है। ऋतुमती स्त्रियो द्वारा साफ किये गये बर्तनों में भी उन दिनो में किसी व्यक्ति को भोजन नहीं करना चाहिये। उनके द्वारा सिले या वुने हुए कपड़ों से धर्म आराधना नही हो सकती और न मन्दिर जाया जा सकता। छोटे वच्चों को छूना पड़े तो उनको रेशमी या गर्म कपड़े पहनाने चाहिये।

अच्छी स्त्रियों को उपरोक्त प्रकार से व्यवहार करना चाहिये जिससे इसकी छाप उनकी पुत्रियों पर भी पड़ेगी और वे भी अच्छा व्यवहार रखेंगी। जो स्त्रियां स्वयं गन्दी या मलिन रहती हैं और उपरोक्त आशातनाएं करती है उनके घर में दरिद्रता और अशांति रहती है, लक्ष्मी रुष्ट होकर चली जाती है और कुटुम्ब कष्ट पाता है। जैन धर्म के आचरण में द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से पवित्रता रखने पर वल दिया गया है। इसमें मलिनता को कोई स्थान नही है।

जिणाणं–जावयाणं, तिन्नाणं–तारयाणं
बुद्धाणं–बोहयाणं, मुत्ताणं–मोअगाणं।

—श्रीनमुत्थुणं सूत्रम्

भावार्थ——राग द्वेष पर विजय वर्या छो, अमने विजयी करजो,
भव सागर ने तरी गया छो, अमने भवपार करजो,
केवलज्ञान लह्यु छे आपे, अमने ज्ञानी करजो,
सर्व कर्म थी मुक्त बन्या छो, अम बंधनने हरजो॥

साधक-साधना

—श्रीमती मंजू परमार

मन विचारो का केन्द्र है तो विकारो का भी, उसमे विचारो की तरगें भी तरगित होती रहती हैं तो विकारो के गन्दे नाले भी बहते रहते हैं। मानव का मन सुन्दर और असुन्दर दोनो भूलो मे भूलता है।

विकारो को विचार के रूप मे बदलना यह मनुष्य के अपने हाथ मे है। प्रबुद्ध एव विवेकशील साधक मन को विकारो से रहित बना सकता है। खेत म ईख भी पैदा होती है तम्बाखू भी। उसमे तरबूज भी उगाया जा सकता है तो विषाक्त तुम्बा भी, बीज डालना स्वय के हाथ मे है। वह जैसे बीज डालेगा, उसके अनुरूप पौधे एव बेले अकुरित, पल्लवित, पुष्पित एव फलित होगी। इसी प्रकार यदि हम अपने मन की भूमि मे विचार के बीज डालेंगे ता विचार फलेंगे। कहने का अभिप्राय यह है कि हम जैसा कर्म करते हैं उसी के अनुरूप फल मिलते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है कि आत्मा ही सुख-दु ख का कर्त्ता है। अन्य कोई नही।

"अप्पाकत्ता-विकत्ताय, दुहाणय सुहाणय"

जिस व्यक्ति मे ज्ञान है विचार है सोचने समझने की शक्ति है वही इस सत्य, तथ्य को समझ सकता है। नीतिकारो ने कहा है कि दपण उसी के लिये उपयोगी है जिसके पास नेत्र हैं। अन्धे व्यक्ति के लिए दर्पण कितना ही सुन्दर क्यो न हो, उसके लिये उसका कोई उपयोग नहीं है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ है, मन, वचन एव काया से समस्त इन्द्रियो का सयम करना। आत्म सयम मनुष्य का सर्वोत्कृष्ट सद्गुण है।

ब्रह्मचय शरीर की मूल शक्ति है। जीवन का ओज है, जीवन का तेज है। ब्रह्मचर्य सवप्रथम शरीर को सशक्त बनाना है। वह हमारे मन को मजबूत एव स्थिर बनाना है।

वासना आत्मा का सबसे भयकर एव खतरनाक शत्रु है। इस परविजय पाना आसान काम नही है। हजारो लाखों व्यक्तियो को परास्त कर देना सरल है परन्तु वासना पर काबू पाना दुष्कर ही नही महादुष्कर है। ब्रह्मचर्य की साधना के लिए साधक को अपने भोजन पर भी विचार करना चाहिये। भोजन का और ब्रह्मचर्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक मे कहावत है जैसा आहार वैसा विचार और जैसा अन्न वैसा मन।

तप और ब्रह्मचर्य एक दूसरे के विरोधी नही सदा से सहयोगी रहे हैं। तप की साधना तभी सफल होगी जबकि उसमे पूर्ण ब्रह्मचर्य की साधना की जायेगी। शास्त्रो मे तो यहा तक कहा गया है कि ब्रह्मचय स्वय अपने आप मे एक महान् तप है। भगवान महावीर ने कहा है कि तपो मे सर्वश्रेष्ठ तप ब्रह्मचय है।

विवाह वासना को नियन्त्रित करने का एक मलहम (Ointment) है और मलहम का उपयोग उसी समय किया जाता है जब शरीर के किसी अग-प्रत्यग पर जख्म हो गया हो। परतु घाव के भरने के बाद कोई भी समझदार व्यक्ति शरीर पर मलहम लगाकर पट्टी नही बाधता क्योकि मलहम सुख का साधन नही, बल्कि रोग को शान्त करने का उपाय है। इसी तरह विवाह वासना के अदम्य वेग को रोकने के लिए, विकारो के रोग को क्षणिक उपशात करने के लिए है, न कि उसे बढाने के लिए। अत दाम्पत्य जीवन भी अमर्यादित नही, मर्यादित होना चाहिए। □

वर्तमान युग—एक सत्य

□ कु० छाया विरेन्द्र भाई शाह

'सत्यमेव जयते' अर्थात् सत्य की हमेशा जीत होती है। महात्मा गांधी ने यहां तक भी कहा है कि 'सत्य ही ईश्वर है।' अर्थात् सत्य का इतना महत्व है कि ईश्वर के दर्शन करना या सत्य बोलना एक ही बात है।

महात्मा गांधी ने बाल्यावस्था में चोरी की, धूम्रपान किया, लेकिन जब यह सब सामने आया तो वे सत्य पर अडिग रहे।

पुराने युग में भी सत्य का बहुत महत्व था। जैन धर्म के 24 वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने महाव्रतों में भी बताया है कि सत्य बोलने के लिए बड़ी सावधानी की आवश्यकता होती है। बिना विचारे बोलना, क्रोध, लोभ, भय तथा हास्य के वश में होकर बोलना असत्य भाषण को प्रोत्साहन देते है और सन्मार्ग से भटका देते है। अतः सत्य बोलने के लिए उसे त्यागना चाहिये।

दयानन्द सरस्वती जो कि आर्य (समाज) के संस्थापक थे उन्होंने कहा है कि "प्रत्येक मनुष्य को असत्य को त्यागने और सत्य को ग्रहण करने के लिए सदा उद्यत रहना चाहिये।"

पुराने युग में सत्य का महत्व बहुत ज्यादा था किन्तु आधुनिक युग में भी कुछ कम नहीं। सत्य के राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य के कारण राज्य, महल, पत्नि, बच्चे सब का त्याग कर दिया और स्वयं ने शमशान में नौकरी करना पसन्द किया। अन्त में सत्य की विजय हुई। उन्हें राज-पाट, पत्नि, बच्चे सब प्राप्त हो गया।

वर्तमान युग में जयपुर में विराजमान् आचार्य मनोहर श्री जी महाराज जो कि सत्य का जीता-जागता उदाहरण है। उनकी सत्य, मधुर वाणी ने सभी श्रावक-श्राविकाओं, बालक, बालिकाओं को जीत लिया है।

उपरोक्त कथन से हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि हमे हमेशा सत्य बोलना चाहिये क्योंकि जब हम कोई गलत कार्य करते है फिर भी सत्य बोलते हैं तो कोई दूसरा हमसे खुश ही होगा और हमें माफ कर देगा। और यदि हम झूठ बोलते हैं तो वह हमें बुरा-भला कहेगा और स्वयं हमारी आत्मा भी धिक्कारेगी और हमें हमेशा डर रहेगा।

सत्य हमेशा कल्याण करने वाला होता है लेकिन वह हमेशा सुन्दर भी हो यह आवश्यक नहीं। हम यदि सत्य बोलते है तो वह दूसरे को अच्छा लगे यह आवयश्क नही है, लेकिन हमें सत्य पर अडिग रहना चाहिए।

राजकुमार का त्याग

❑ श्री शोमनाथ पाठक

मगध मे एक महान राजा थे। उनका नाम था श्रेणिक। राजा श्रेणिक की रानी का नाम था धारिणी। राजा श्रेणिक तथा रानी धारिणी बड़े धार्मिक, दानी और प्रजा के सुख दुःख का ध्यान रखने वाले शुभ चिंतक थे।

एक बार राजमहल मे सोई हुई रानी धारिणी ने रात्रि के चौथे पहर मे एक भयानक स्वप्न देखा। रानी की नीद खुल गई। उसने डरी डरी सी राजा श्रेणिक को जगाया। राजा भी उन्हें भयभीत देखकर कारण पूछने लगे। रानी धारिणी कापती हुई आवाज मे बोली कि मैंने एक भयानक स्वप्न देखा है कि एक हाथी मेरे मुख मे प्रवेश कर रहा है। उस विशालकाय हाथी के प्रवेश से मैं डर रही हू।

राजा श्रेणिक मुस्कुराते हुए बोले रानी यह तो खुशी की बात है, तुम एक प्रतापी पुत्र की मा बनने वाली हो, भला इसमें डर की क्या बात है। फिर भी सुबह दरबार मे इस विषय पर पडितो से चर्चा करूंगा।

सुबह राजा ने दरबार मे पडितों के सामने रात के स्वप्न का विवरण सुनाया। राजा स्वय इस विद्या के विद्वान थे, फिर भी पडितों से उन्होंने परामर्श किया। सभी पडितो ने स्वप्न को सुखदायी बताते हुए, प्रतापी पुत्र के जन्म की पुष्टि की। चारो ओर खुशी का वातावरण छा गया।

रानी धारिणी की देखभाल के लिए विशेष परिचारिकायें लगा दी गई। कई महिने बीत गये। एक दिन रानी को मेघ व वर्षा का दोहद उत्पन्न हुआ, अर्थात् रानी की इच्छा हुई कि वे घनघोर बादलो की गर्जन व भीनी भीनी वर्षा की फुहार मे हाथी पर चढकर घूमती। अपनी इस इच्छा (गर्भकाल की इच्छा को दोहद कहते हैं) को रानी ने राजा से कहा।

राजा कुछ चिन्तित हुए क्योंकि इस समय वर्षा ऋतु नही थी। रानी की इच्छा को कैसे पूरी की जाए, इस विषय मे उन्होंने अपने महामात्य (मन्त्री) अभय कुमार से परामर्श किया। मन्त्री ने राजा को आश्वस्त कर अनुष्ठान का आयोजन किया। तेले की तपस्या कर, मन्त्र विशेष से आराधना की गई। देवता प्रसन्न हुए, बादल घिर आये और रिम-झिम की फुहार प्रारम्भ हो गई।

रानी धारिणी और राजा श्रेणिक की खुशी का ठिकाना न रहा। रानी हाथी पर बैठ, वर्षा की फुहार मे घूमने निकली। चारो ओर खुशी का

वातावरण फैल गया। रानी का दोहद पूरा हो गया। वे राज महल में लौट आई।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा। नौ महीने नौ दिन के बाद रानी धारिणी ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ था, अतः उस पुत्र का नाम मेघकुमार रखा गया। बड़े लाड़ प्यार से राजकुमार का पालन पोषण होने लगा।

राजकुमार जब कुछ बड़े हुए तो शिक्षा के लिए कलाचार्य के पास भेजे गये। प्रखर-प्रतिभा तो थी ही शीघ्र ही वे बहत्तर कलाओं के ज्ञाता हो गये। राजा रानी मेघकुमार की बहुमुखी प्रगति पर फूले न समाते।

किशोर अवस्था को पार कर मेघकुमार जब युवावस्था में पहुंचे, तो उनका विवाह सुन्दर राजकुमारियो से हुआ। राजमहल में बड़ी सुख-सुविधा के साथ उनका जीवन व्यतीत होने लगा।

एक बार भगवान महावीर राजगृही मे आये। समवसरण में नगर की जनता उमड़ कर धर्म लाभ लेने लगी। मेघकुमार भी राजमहल के झरोखे से इस दृश्य को देखकर बहुत प्रभावित हुए। उनकी भी इच्छा हुई कि समवसरण में पहुंच कर प्रवचन सुनें। दूसरे ही दिन रथ पर बैठकर मेघकुमार भगवान महावीर के समवसरण में पहुंचे।

भगवान महावीर के प्रवचन से प्रभावित होकर मेघकुमार का अन्तस प्रवज्या लेने को अधीर हो उठा। वे राजमहल में लौट तो आये, पर रात भर सो न सके। भगवान महावीर की धर्म वाणी मेघकुमार के हृदय मे हलचल पैदा कर रही थी।

मेघकुमार की अधीरता को रानी धारिणी भांप गई। राजकुमार ने भी मां से अपने मन की बात बता दी। रानी धारिणी विह्वल हो उठी। मेघकुमार को खूब समझाने बुझाने लगी, पर वे टस से मस नही हुए। वे तो दीक्षा लेने का संकल्प ले चुके थे।

मां धारिणी की आंखों में प्रेमाश्रु छलकने लगे। वे कातर स्वर में बोली, बेटा! मैं तो तुम्हें राजसिंहासन पर राजा के रूप में देखना चाहती हूं। मैंने बड़े-बड़े सपने सजाये थे, बेटा मेघकुमार मेरी बात मानो, तुम राजसिंहासन स्वीकार करो, प्रवज्या ग्रहण मत करो। मां की ममता का सम्मान तुम न करोगे तो कौन करेगा बेटा·······कहते कहते रानी बेहोश हो गई।

मेघकुमार गम्भीर हो गये। राजमहल को लौट गये। मां को साँत्वना देकर सम्भाला। अच्छा मां मैं राजसिंहासन पर बैठ जाता हूं व राजा रूप में मां की आज्ञा का पालन करता हूं, पर एक दिन राज्य करने के बाद ही प्रवज्या ग्रहण कर लूंगा। मां ने स्वीकृति दे दी।

राज्याभिषेक की तैयारियाँ शुरू हो गई। निर्धारित तिथि पर मेघकुमार सिंहासनारूढ़ हुए। राज्य भर में खुशी का असीम उछाह छा गया। मां धारिणी का हृदय जुड गया। मां की इच्छा पूरी कर अब मेघकुमार अपनी इच्छा की पूर्ति हेतु अग्रसर हुए।

दूसरे दिन रथ-घोड़े, हाथी अपार जन समूह के साथ मां धारिणी को लिए मेघकुमार भगवान महावीर के समवसरण में पहुंचे। राजा श्रेणिक भी हाथी पर बैठे आगे आगे चल रहे थे। राजा श्रेणिक, रानी धारिणी व राजकुमार (मेघ) भगवान महावीर का आशीर्वाद प्राप्त कर धन्य हो गये। अपार वैभव-विलास को त्याग मेघकुमार प्रवज्या ग्रहण कर महावीर के शिष्य बन गये।

सभी श्रमणो में मुनि मेघकुमार को भी शयन उसी अनुरूप करना पड़ा। उनका शयन क्रम दरवाजे के पास पड गया। कई दिनों तक उन्हें नींद नही आई। कठोर तप के लिए तो वे तत्पर थे, किन्तु दरवाजे के पास शयन करते समय आने जाने वाले श्रमणों के पैर से स्पर्श की अनुभूति, अपमान के रूप में उन्हे अखरने लगी।

कुछ दिनों पश्चात् मुनि मेघकुमार खिन्न होकर सोचने लगे कि रात दरवाजे के पास सोकर गुजारनी पड़ती है। कोई श्रमण यह नही सोचता कि ये मगध के राजकुमार सोये हैं। अंधेरे में पैरों की ठोकर लगने पर मेघकुमार तिलमिला उठते

व अपने सोने, हीरो मणियो से जडित सिंहासन के विषय मे सोचने लगते । फिर क्या था रातभर उन्हें नीद नहीं आती ।

इसी उधेड बुन मे वे भगवान महावीर के पास पहु चे । उन्हे देखते ही महावीर बोल उठे, क्यो मुनि मेघकुमार थोडे से कष्ट पर इतना उतार-चढाव । तुम इस जीवन से उस जीवन की तुलना करने लगे हो । यहा तक कि तुम इस कष्ट से ऊबकर पुन राजकुमार बनने की कामना से मेरे पास उपस्थित हुए हो ।

मुनि मेघकुमार चकित रह गये । काटो तो खून नहीं । वे सोचने लगे कि मेरे मन की बात महावीर कैसे जान गये, जबकि मैंने तो किसी को भी कुछ नहीं बताया था । प्रगट रूप मे प्रणाम कर मुनि मेघकुमार भगवान महावीर के चरणो पर सिर झुकाकर, बोल उठे भगवान यह सब रहस्य आपको कैसे ज्ञात हुआ ।

महावीर मुस्कुराये व बोले, मेघ ! मैं तुम्हारा भूत-भविष्य, वर्तमान सब जानता हू । सुनो अपने पूर्वभव की कथा—

आज के इस वर्तमान भव से तीन जन्म पूर्व तुम वैताढय गिरि के घने वनो मे बलशाली हाथी थे । तुम्हारा नाम सुमेरुप्रभ था । तुम यूथपति थे । बडे सुख शांति का जीवन गुजार रहे थे । एक दिन अचानक दावाग्नि दहक उठी सारा वन धू धू कर जलने लगा । भयानक गर्मी का मौसम था । सभी हाथी भयभीत हो इधर-उधर भागने लगे । तुम उस समय बूढे हो गये थे । बहुत दूर न भाग सके । प्यास से व्याकुल एक तालाब में प्रवेश किया कि कीचड में फस गये वृद्ध थे इसलिए निकलना सभव न हो सका । इसी समय एक बलशाली हाथी की नजर तुम्हारे ऊपर पडी । वह तुमसे द्वेष रखता था । अच्छा अवसर देख वह युवा बलशाली हाथी तुम्हारे ऊपर टूट पडा । तुम बूढे थे इसलिए युद्ध न कर सके और घायल होकर मर गये ।

दूसरे भव मे तुमने पुन हाथी के रूप में ही जन्म लिया । इस बार विन्ध्याचल की पहाडियो मे तुम्हारा आधिपत्य हुआ । तुम यूथपति थे दावाग्नि मे सुरक्षा के लिए एक समतल भूमि तुम तैयार कर उसमे आनन्द से निर्भीक हो जीवन व्यतीत करने लगे । एक दिन अचानक जगल में आग लग गई । सभी पशु पक्षी अपने-अपने प्राणों की रक्षा के लिए इधर उधर भागने लगे । तुम निश्चित थे क्योंकि समतल मैदान में तुम्हारे आस पास घास-फूस-पेड नहीं था । बडे सुख से तुम दावाग्नि का दृश्य देख रहे थे । तभी तुम्हारे शरीर में खुजली हुई । खुजलाने के लिए तुमने पैर उठाया तभी एक खरगोश भागता हुआ दावाग्नि से बचने के लिए तुम्हारे पैरो के नीचे खडा हो गया । शरीर खुजलाने के बाद जब तुम अपना पैर नीचे करने लगे, तब खरगोश को शरणागत देख द्रवित हो गये ।

यदि तुम नीचे पैर रखते तो खरगोश कुचल जाता अत दया भाव से लगातार तीन दिन तक तुम पैर उठाये खडे रहे । दावाग्नि जब बुझी तब खरगोश वहा से भागा । तीन दिन तक लगातार पैर उठाये रखने के कारण तुम्हारा पैर अकड गया । भारी-भरकम शरीर तीन पैरों पर न सभल सका । तीन दिनों तक खाना-पानी न लेने के कारण भी शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पडा । तुम धडाम से गिर पडे और मर गये । उसी पुण्य के प्रभाव से इस भव मे राजा श्रेणिक के पुत्र रूप पैदा हुए हो ।

अपने पूर्व भवो की रोमाचक कथा भगवान महावीर के मुख से सुनकर मेघकुमार स्तम्भित रह गया । यही नही वरन सारा दृश्य उसकी आखों के सामने नाच उठा । मेघ गद्‌गद्‌ हो भगवान के चरणों पर गिरकर अपनी भूल के लिए क्षमा याचना करने लगा । भगवान ! अब यह शरीर जन जागरण के लिए अर्पित है ।

मुनि मेघकुमार कठोर साधना मे निमग्न हो सभी के कल्याण की कामना से घूम-घूम कर धर्मोपदेश देने लगे । अनन्त बारह वर्ष की तपस्या के पश्चात मोक्ष को प्राप्त हुए । □

हम कैसे व्यापारी

□ श्री धनरूपमल नागौरी एम. ए.बी. एड.' साहित्यरत्न'

महाजनों का प्राण व्यापार है। जब से सृष्टि की आदि हुई तब से व्यापार का क्रम चल रहा है, चला है और चलता रहेगा। कभी कम तो कभी अधिक, ऐसा तो प्रकृति के नियमानुसार होता आया है, होता रहेगा। इसीलिये नीतिकारों ने लिखा है 'व्यापारे वसति लक्ष्मी' अर्थात् व्यापार में लक्ष्मी का निवास होता है। प्रत्येक वस्तु के दो पहलू है। सत्, असत्, शुभ, अशुभ, अच्छा, बुरा आदि। आज हमारा व्यापार विशेषतः अर्थ प्रधान हो गया है। आत्म प्रधान नहीं रहा। उसका ही यह परिणाम है कि जैवनिक विषमतायें बहुत बढ़ गई है। आत्मशान्ति हमारी समाप्त हो गई है और हम नदी के बहाव की भांति इसमें बहे जा रहे है। खाने, पीने, सोने, उठने, बैठने सब हराम हो गये है। जितना इस अर्थ (धन) के पीछे भाग रहे हैं, उतने ही दुःखी हो रहे है। कैसा अनूठा व्यापार हम कर रहे है, यह हमारे स्वयं के लिये विचारणीय है।

प्राचीनकाल में व्यापार होते थे, उसमें सांसारिक लक्ष्मी को प्राप्त करने के साथ ही मोक्षरूपी लक्ष्मी को प्राप्त करने का भी व्यापारी का लक्ष्य रहता था। क्योंकि वे जानते थे कि व्यापार करते-करते तो अनन्त काल बीत गया। किन्तु सही व्यापार तो तभी होगा, जब मोक्ष रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति होगी। इसलिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनकी साधना में, सर्व प्रथम वे 'धर्म' को स्थान देते थे। धर्म के बाद दूसरा नम्बर अर्थ का आता था। परन्तु आज बात विपरीत हो गई। 'धर्म' तो किसी नम्बर पर ही नही रहा। 'अर्थ और काम' का बोलबाला हो गया। फिर भला संसार भ्रमण का व्यापार क्यों नहीं बढ़ेगा? यही हो रहा है। भव भ्रमण बढ़ रही है और इस भ्रमण के साथ दुःख, रोग, भय, अशांति आदि भी बढ़ती जा रही है। इसलिये ज्ञानियों ने स्पष्ट किया है कि धर्म का व्यापार अगर आप करेंगे तो सब प्रकार के दुःख, रोग, भयादि खत्म हो जायेंगे और जीवन में सुख-शांति बढ़ेगी। व्यापार का भी एक तरीका है। न्याय, ईमानदारी और साख से व्यापार बढ़ता है। जबकि इसके विपरीत आचरण से व्यापार घटता है। इसी क्रम में अपनी दृष्टि से ज्ञानियों ने व्यापारियों के तीन भेद किये है—

(i) मूलधन से लाभ कमाने वाले।

(ii) मूलधन सुरक्षित रखने वाले।

(iii) मूलधन गंवा देने वाले।

ज्ञानियों ने अपनी दृष्टि में मूलधन 'मानव-जीवन' या 'मनुष्य जन्म' को माना है। उनकी

दृष्टि मे यदि कोई अमूल्य धन है तो 'मनुष्यजन्म'। तीनो प्रकार के व्यापारियो की व्याख्या करते हुए प्रथम प्रकार के व्यापारी वे बताये हैं कि जो मूलधन से यानि इस मनुष्य जन्म में अनेकानक शुभ कार्य करके देवयोनि रूप और उससे भी अधिक मोक्ष रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं। ऐसे व्यापारी भवभीरु होते हैं और सदैव इस बात का ध्यान रखते हैं कि हमारा मूलधन अकारथ न हो जाये। हम बाजी हार न जाए।

दूसरी किस्म के व्यापारी वे हैं जो इस मूलधन को व्यर्थ न गवाकर ज्यो का त्यो सुरक्षित रख लेते हैं। वे मूलधन से अपनी करनी के द्वारा लाभ तो नही कमाते, किन्तु उसको सुरक्षित रख लेते हैं। उसमे मानवीय दृष्टिकोण अथवा मानवता होती है, इसानियत होती हैं। वे सरल होते हैं। और कोई भी काम ऐसा वैसा नही करते जिसमे उनके मूलधन यानि मनुष्य जन्म को खतरा हो। अत एसे व्यापारी मूलधन को सुरक्षित बना लेते हैं और मरकर पुन मनुष्य जन्म पाने मे सफल हो जाते हैं।

तीसरी प्रकार के व्यापारी वे हैं जिनकी कथनी व करनी मे अन्तर होता है। भवभीरुता नही होती वे तो शुभा-शुभ प्रवृत्ति की ओर ध्यान ही नहीं देते। अनीति, बेईमानी, दुराचार, मिथ्या भाषण कूडकपट आदि का व्यवहार करते हैं और अपने मूलधन से ऐसी करनी करते हैं कि मरकर या तो नारकी अथवा तो तिर्यंच (पशु-पक्षी) योनि में जन्म लेते है। अपनी करनी के द्वारा और अशुभ व्यापार द्वारा दुख को बुलाकर उसके साथी हो जाते हैं। भव-भ्रमण बढा लेते हैं। उत्तम मनुष्य जन्म रूपी मूलधन को सर्वथा गवा देते हैं। उनका व्यापार एकदम हानि का व्यापार होता है, जिसमें दुख, क्लेश, रोग, भय, अशाति आदि बढ़ती है। सुख का लेश भी नही होता।

बन्धुओ! पर्वाधिराज पर्युषण पर्व आ रहे हैं। हमे स्वस्थ चित्त से सोचना है कि हम कैसे व्यापारी बनें। यो तो पूरा मानव-जन्म रूपी पूरा मूलधन ही हमेशा शुभ व्यापार करके लाभ कमाने हेतु मिला है, परन्तु यदि पूरे जीवन भर यदि हम शुभ व्यापार का ध्यान न रख सकें और विशेषत पर्व में भी रखलें तो भी कल्याणकारी होगा। हमें इस विषय में तथा अपने मूलधन लाभ कमाने के लिए सोचने हेतु पर्व से बढ़कर दिन और क्या हो सकता है?

रात्रि भोजन त्याग का फल—

ये रात्रौ सर्वथाऽऽहार, वर्जयन्ति सुमेधस।
तेषा पक्षोपवासस्य, फल मासेन जायते।

जो सज्जन रात्रि में चारों आहार का सर्वथा त्याग करता है, उसे महिने मे पन्द्रह दिन के उपवास का फल मिलता है।

अहिंसा का महत्व

— भगवान जी भाई वीरपाल शाह
(अहमदाबाद)

अहिंसा का क्या महत्व है यह बात हमें सब धर्मों में से जैन धर्म में सर्वाधिक जानने को मिलती है। अहिंसा का अर्थ है "**किसी जीव की हिंसा न करना**।" भगवान महावीर के पांच महाव्रतों में अहिंसा के बारे में लिखा है कि किसी भी प्राणी को शारीरिक या मानसिक कष्ट या हानि न हो। भोजन और जल ग्रहण में भी सर्तकता बरतनी चाहिये ताकि किसी जीव की हिंसा न हो। भगवान महावीर का संदेश भी यही था कि "**जीवो और जीने दो।**"

जैन तीर्थंकर भगवान नेमीनाथ की बारात राजुल के घर के पास पहुंची तो उन्होंने पशुओं की चीत्कार सुनी तो रथ रोककर भगवान नेमीनाथ ने अपने साले से पूछा कि यह चीत्कार कैसी है तो साले ने उत्तर दिया कि रात को शादी होगी और सुबह इन पशुओं से बना खाने का भोजन होगा यह सुनकर अपना रथ सहेसावन की तरफ मोड़ने को कहा और वहां जाकर उन्होंने दीक्षा ले ली और राजुल को जब यह मालूम चला तो उसने भी दीक्षा ले ली।

वर्तमान युग में भी अहिंसा का बहुत महत्व है। भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी कहा है "**मेरे जीवन का पहला और अन्तिम मन्त्र है अहिंसा**" गांधी जी जब विदेश में पढ़ने गये तो उन्होंने व्रत लिया था कि वे मांसाहार का प्रयोग नहीं करेगे और वास्तव में उन्होंने अहिंसा के कारण ही मासांहार का प्रयोग नहीं किया है।

सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में गांधीजी के आदेश के अनुसार लाखों व्यक्तियों के जुलूस तथा सभायें पूर्णरूप से अहिंसक रहे और जनता के लाठियां पड़ने पर क्रुध होकर हिंसात्मक प्रतिकार नही किया। गांधी जी ने इस बात पर बड़ा जोर दिया कि हमें अत्याचार का विरोध करना चाहिए किन्तु अत्याचारी के प्रतिद्वेष या क्रोध नहीं करना चाहिए। विश्व के इतिहास मे अहिंसा का इतने बड़े पैमाने पर प्रयोग और कही नहीं हुआ।
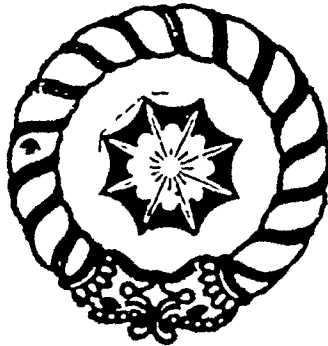
फूलझडी-फटाकों का बहिष्कार करो

© श्री जैन श्वेताम्बर पल्लीवाल सघ

दीपावली के शुभ अवसर पर, अबोध निर्दोष जीव आपसे
दया की प्रार्थना करते हैं। रक्षा की भीख मागते है।

किसी का बुरा करके क्या हम सुखी हो सकेंगे ? दीपावली पर आप फटाके खूब चलाते हो। ठीक है। परंतु तुम्हें इस बात का पता है कि फटाके चलाना वो

बहुत बडा अधर्म हैं
बहुत बडी हिंसा है !
बहुत बडी निर्दयता है !

फटाके चलाके आप दीपावली की खुशिया मनाओगे, किन्तु ये दूसरो को दु खी करके त्योहार मनाना क्या न्याय है ? क्या मानवता है ?

तुम जो बम फटाके चलाते हो उसके धडाके के कारण रात्री के समय मे हजारो कबूतर चिडिया, कौआ आदि पक्षी निर्दोश प्राणी भयभीत हो जाते हैं। भय से काप उठते हैं और भय के कारण अंधेरे में उडते हुए इलैक्ट्रिक वायरो से चिपक कर अपनी जान गवा बैठते हैं या दीवारों से टकरा जाते हैं और बिल्ली आदि के मुंह मे जाकर उनका ग्रास बन जाते हैं।

चीटी मकोडो आदि सूक्ष्म जीवो की लाखो की सख्या मे मौत हो जाती हैं।

आनन्द आपका और ये निर्दोश जीव की मौत क्या क्षणिक आनन्द के कारण निर्दोप जीवों को मौत के घाट उतारने का आपको अधिकार है ?

फटाको के कारण बहुत से जनधन का नुकसान होता हैं, कई बुरी तरह जल जाते हैं। कई जिन्दगी भरके लिए अंधे हो जाते हैं। कइयो को हाथ-पैर जल जाने से कटवाने पडते हैं। कहीं आग लग जाने से लाखों की सम्पत्ति का नाश हो जाता है।

'जिस फटाके को चलाने में' हिंसा और अधम है'
पैसे और समय की बर्बादी है
दूसरो के चैन का नाश है
परलोक मे जिससे दुर्गति मिलती है
ऐसे फटाको को आप चलाना छोड दो।
अगर आप पुण्य पाप मानते हो तो फटाके चलाना छोड दो।
मानवता को मानते हो तो भी फटाके चलाना छोड दो।
अहिंसा दया करुणा को मानते हो तो भी फटाके चलाना छोड दो।
बच्चों-युवाओं तथा बुजर्गों सब भाई-बहनों से निवेदन है
कि अहिंसा पूर्ण दीपावली मनायें।

श्री जैन श्वेताम्बर शान्ति नाथ स्वामी जैन तीर्थ

चन्दलाई गांव का संक्षिप्त इतिहास

संयोजक बलवन्त सिंह छजलानी

राजस्थान की राजधानी, भारत का दर्शनीय स्थल, गुलाबी नगरी जयपुर शहर के समीपस्थ अति प्राचीनतम वास्तु शिल्प की सुन्दरतम रीति से सुगठित भव्य मन मोहक शान्तिनाथ परमात्मा की नयनरम्य प्रतिमा सहित चन्द्र प्रभुस्वामी पार्श्वनाथ स्वामी जिन बिम्ब सहित का गर्भ ग्रह सिंह द्वार भव्य रंग मंडप सभा मण्डप सहित करीब जमीन से 45 फूट की ऊंचाई पर शिखर सहित लहराती ध्वजा पताका युक्त भव्य जिनालय स्थित है।

यहां पर इस जिनालय की प्रतिष्ठा विक्रम सं. 1703 में परम पूज्य आचार्य भगवन्त सुमतिसागर जी महाराज के कर कमलों से हुई इसमें मूलनायक शान्तिनाथ आदि जिन बिम्ब की प्रतिष्ठा अंजनशालाखा वि. सं. 1702 के महाकृष्ण त्रयोदशी गुरुवार को विशाल संघ की उपस्थिति मे महोत्सव पूर्वक हुई थी। जिसका शिला लेख मौजूद है। यह जयपुर जिले का प्राचीनतम दूसरा जिनालय है। प्रथम तो सांगानेर महावीर स्वामी का शिखर युक्त जो कि तपागच्छीय आचार्य विजयहीरसूरी महाराज के शिष्य विजयसेनसूरी महाराज के कर कमलों द्वारा प्रतिष्ठित है। यह जिनालय आप श्री के शिष्य शान्तिचन्द्र उपाध्याय के वरद् हस्तो प्रतिष्ठित है।

अत्यधिक, प्राचीन होने के कारण समयानुसार इसमें जीर्णोद्धार की आवश्यकता रही। यह मन्दिर जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ के जयपुर अधीनस्थ हुआ उस समय सं. 2020 में सेठ आनन्द जी कल्याणजी की पेढ़ी अहमदाबाद ने 4100) रु. धन राशि से जीर्णोद्धार कराया परन्तु समय की गति के अनुसार अत्यधिक जीर्ण अवस्था को देख जैन श्वे० तपागच्छ संघ ने इस ओर ध्यान दिया और जीर्णोद्धार का कार्य प्रारंभ कराया। समय समय पर दी हुई आर्थिक सहायता के फलस्वरूप करीब 55 हजार अब तक सघ का लगा है।

आज पूर्ण शिल्प शास्त्र एवं प्राचीनता को ध्यान में रखते हुए गर्भग्रह में वेदी गादी रंग मंडप सभा मंडप अनिवार्य रूप से मारबल का कार्य हुआ जिसमें लगभग 900 फुट मारबल लग कर मन्दिर को अति सुन्दर एवं स्थाईत्व प्राप्त कराया है।

शिखर जो प्राचीनतम पुरानी कला युक्त था जो अर्थाभाव से जहां का जहां सीमेंट से कर रखा था उसे भी पुनः शास्त्रीय रूप देकर पूर्ण शिल्प युक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार कार्य करीब करीब पूर्ण हो चुका है जिसकी पुनः प्रतिष्ठा सं. 2039 के मगसर वद 5 रविवार, दिनांक 5 दिसम्बर 1982 को होना संभावित है।

यह सब आप सब के सहयोग एवं शासन देव की असीम कृपा से संभवत हो सका है।

०: –:०

मुक्तक

—श्री सुरेश कुमार मेहता

1 अंकुर यदि फूटा नहीं तो बीज बोया ही क्या,
आंसू यदि छूट नहीं तो भक्त फिर रोया ही क्या।

मन की निर्मलता के बिना उपासना करने वालों,
दाग अगर मिटा नहीं तो वस्त्र फिर धोया ही क्या।

2 दर्पण के सामने आने से अपना ही दर्शन मिलता है,
दीपक की लौ जलाने से अपना ही आगन खिलता है।

भगवान का नाम लेना उस पर एहसान नहीं
उसको दिल में बिठाने से अपना ही जीवन खिलता है।

3 त्याग वह है जिसके लिए कभी मन मे एहसान नहीं होता,
दान वह है देने के बाद फिर मन में अभिमान नहीं होता।

त्याग और दान की दुहाई देना तो बहुत सरल बात है,
सच्चाई यह है दान और त्याग करना आसान नही होता।

4 सबके अपने अहम् हैं दूसरों के लिए दिल में प्यार नहीं है,
कोई भी अपने उपदेशो के प्रति ईमानदार नही है।

मर मिटने को सब तैयार हैं अपने सम्प्रदायो के लिए,
जबकि धर्म के लिए मरने को कोई भी तैयार नही है।

5 मैं नहीं कहता परम्पराओ को आप तोड दीजिए,
अपना सम्बन्ध दूसरे सम्प्रदाय से जोड लीजिए।

पर एकता की बात नही सुहाती यदि, "लोगो",
तो कम से कम फूट डालने का काम तो छोड दीजिए।

श्री पंच परमेष्ठि महामंत्र महिमा और उसमें सन्निहित सिद्धियां

⊕ श्री अरूणेश कुमार शर्मा

सा. जन सम्पर्क अधिकारी, राजस्थान

श्री पंच परमेष्ठि नमस्कार महामंत्र–श्री जिनकीर्त्ति सूरिजी महाराज के अनुसार–परमेष्ठिनोऽर्हदादयस्तेषां नमस्कारः श्रुतस्कन्ध रूपी नव पदाष्टसम्पदष्ट षष्ट्यक्षर मयो महामन्त्रः– अर्थात् अर्हत् आदि परमेष्ठियों का श्रुतस्कन्धरूप जो नमस्कार है वह नौपद, आठ सम्पद् तथा अड़सठ अक्षरों से युक्त महामन्त्र है।

इसके नव पदों के आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी भंगों की 3,62,880 संख्या होती है। इसमें नो पद है तथा नौओं पदों की अपेक्षा गुणनरूप क्रियाये भी नो है। इसीलिए इसे नवकार मत्र भी कहते हैं।

श्रीनवकार मंत्र अत्यन्त प्रभावशाली मंत्र है। यह सब समीहित पदार्थों की प्राप्ति के लिए है। इसकी महिमा कल्पवृक्ष से भी अधिक है। यह शान्तिक और पौष्टिक आदि आठ कार्यों को पूर्ण करता है। इस लोक और परलोक के अपने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए श्री गुर्वाम्नाय से इसका ध्यान करना चाहिये।

महामंत्र की व्याख्या करने वाले कुछ महानुभावों ने यति (पाठच्छेद) अथवा वाचना सहयुक्त वाक्यार्थ योजना का) नाम सम्पद मान कर निम्न आठ सम्पद मानी हैं–

(1) णमो अरिहन्ताणं

(2) णमो सिद्धाणं

(3) णमो आयरियाणं

(4) णमो उवज्झायाणं

(5) णमो लोए सव्वसाहूणं

(6) एसो पंचणमोक्कारो

(7) सव्वपावप्पणासणो

(8) मंगलाणं च सव्वेसिं

(9) पढमं हवइमङ्गलम्।

प्रथम सात पदों की अलग अलग सम्पद तथा आठवें और नवें पद की सहयुक्त वाक्यार्थ योजनानुसार एक सम्पद मान कर उक्त महामंत्र मे स प्रकार आठ सम्पद मानी हैं।

शब्दकल्पद्रुम कोष ने धरणिकोष का प्रमाण देकर सम्पद शब्द को सिद्धिवाचक लिखा है। अत उस अर्थ मे यह महामन्त्र अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये आठ सिद्धियो के देने वाला है।

इस दृष्टि से इस मन्त्रराज के विभिन्न पदो में निम्नलिखित सिद्धिया सन्निविष्ट बताई गई हैं–

(1) णमो–अणिमा
(2) अरिहताण महिमा
(3) सिद्धाण–गरिमा
(4) आयरियाण–लघिमा
(5) उवज्झायाण–प्राप्ति
(6) सव्वसाहूण–प्राकाम्य
(7) पचणमोक्कारो–ईशित्व
(8) मङ्गलाण–वशित्व

सिद्धियो के उक्त आठ पदो में 'णम' का योग किया है। 'कामधेनुतन्त्र मे 'ण' की इस प्रकार व्याख्या की गई है—

णकार परमेशानि या स्वय पर कुण्डली
पतिविद्युल्लताकार पचदेवमय सदा।
पच प्राणमय देवि सदा निगुणसयुतम्
आत्मादि तत्वसयुक्त महामोहप्रदायकम्॥

हे परमेश्वरी जो स्वय पर कुण्डली है उसको ण कार जानो, उसका स्वरूप पीत वर्ण की विद्युत के समान है तथा उसका स्वरूप सर्वदा पचप्राणमय है–सदा तीन गुणो से युक्त रहता है, उसमे आत्मा आदि तत्व सयुक्त रहते हैं तथा वह महामोह-प्रदायक है।

ण कार के अनेक नाम, आकृति रूप बताये हैं। णकार का स्वरूप पचदेवमय कहा है। ये ही पचपरमेष्ठी है। ण कार को पच प्राण मय कहा है। योगी जन पाच प्राणो का सयम करके ही सिद्धि को प्राप्त करते हैं।

इससे स्पष्ट है कि–जैसे ध्यानकर्ता पुरुष ब्रह्मा विष्णु, महेश रूप णकार की आकृति का उनकी अधिष्ठात्री देवी वरदा का ध्यान कर चिन्तन मनन कर सिद्धि प्राप्त करते हैं, योगीजन पच प्राणो का सयम कर सिद्धि प्राप्त करते हैं, अथवा जैसे श्री जैन सिद्धान्तानुयायी पचपरमेष्ठिरूप पचदेव का ध्यान कर सिद्धि प्राप्त करते हैं, तात्रिक लोग योगिनी उपासना से सिद्धि प्राप्त करते है, सायमतानुयायी उसे नाद स्वरूप मानकर निगुण रूप मे उसका ध्यान कर सिद्धि प्राप्त करते हैं– उसी भाति मनुष्य बडी सुगमता से 'णम्' इस पद के जप और ध्यान मे सर्वसिद्धियो को प्राप्त करने योग्य बन जाता है। अत 'णमो' पद म अणिमा सिद्धि सन्निविष्टि है तथा अग्रवर्ती सिद्धि दायक सात पदो मे भी 'णम' का प्रयोग किया गया है। अत श्री नवकार मन्त्र के प्रत्येक पद के विशुद्धभाव से सयम पूर्वक जप और ध्यान से तत्सबधी सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

श्री हेमचन्द्राचार्य जी महाराज ने अपने योग शास्त्र नामक ग्रथ के आठवें प्रकाश मे लिखा है कि—अति पवित्र तथा तीनो जगत को पवित्र करने वाले पचपरमेष्ठि नमस्कार रूप मन्त्र का मन–वचन–शरीर शुद्धि के द्वारा एक सौ आठ बार चिन्तन करने से मुनि भोजन करने पर भी चतुर्थ तप के फल को प्राप्त करता है, इस महामत्र का आराधक परम लक्ष्मी प्राप्त करता है, योगी त्रैलोक्य मे पूज्य होते हैं, सहस्त्रो पापो को करके तथा सैकडो जन्तुओं को मार कर इस मन्त्र का आराधन कर त्रियंच भी देवलोक को प्राप्त हुए हैं। श्रुत से निकली हुई पाचवर्ण वाली पच तत्वमयी विद्या का निरतर अभ्यास करने से ससार के क्लेश नष्ट होते है। यह मन्त्र सर्वज्ञ भगवान के साथ समता रखता है, इसके स्मरण मात्र से ससार का बधन टूट जाता है तथा परमानन्द के कारण मनुष्य अव्यय पद को प्राप्त होता है।

महानुभाव पूर्वाचार्यो का कथन है कि —
नवकार इक्क अक्खर पांव फेड़ेइसत्त अयराणं
पन्नासं चपराणं सागर पण नग्रसमग्गेण ।1।
जो गुणइ लक्खमेगं पूएइ विहीहि जिणनमुक्कार
तित्थयर नामगोत्र सोवंधइ नत्थि संदेहो ।2।
अट्ठेव अट्ठसया अट्ठसहस्स च अट्ठकोडीओ ।
जो गुणइ सत्ति जुत्तो सौ पावइ सामयं ठाण ।3।

अर्थात श्री नवकार मंत्र का एक अक्षर भी सात सागरोपमों के पापोंको नष्ट करता है। इसका एक-एक पद पचास सागरोपमों के पापों को नष्ट करता है। यह समग्र मन्त्र पांचसौ सागरोपमों के पापों का नाश करता है, जो मनुष्य विधिपूर्वक एक लाख बार जिननमस्कार को गुणता है वह तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म को बांधता है, इसमें सन्देह नहीं है। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक आठ, आठ-सहस्त्र तथा आठ करोड बार इसका गुणगान करता है वह मोक्षपद प्राप्त करता है।

उपाध्याय श्रीमद्यशोविजयजी महाराज ने परमेष्ठीगीता में कहा है–

श्री नवकार समो जगि मंत्र न यंत्र न अन्य
विद्या नवि औषधि नहीं ऐह जपे ते धन्य ।।

श्रीनवकार मंत्र गुणन के चमत्कारी प्रभाव तथा उसके फलों का उदाहरणपूर्वक विस्तृत वर्णन श्री कल्पसूत्र आदि ग्रन्थों में भी दिया हुआ है।

श्री पंचपरमेष्ठि नमस्कार महामत्र–एक ऐसा प्रभावशाली मंत्र है जिससे आधि व्याधि से रहित हुआ जा सकता है. सर्वसपत्ति प्राप्त की जा सकती है। जो सर्वाभीष्टप्रद है और कल्पद्रुम से भी अधिक महिमा वाला है। किन्तु आवश्यकता है पूर्ण भक्ति, अविकल प्रेम, दृढ़ आस्था, अटूट श्रद्धा, पर्याप्त उत्साह के साथ गुणन, मनन, चिंतन और जाप व ध्यान करने की। जैसे किसी सरोवर से एक लोटे भर जल लेकर जो विधिपूर्वक सुख से पान करता है उसकी तृषा तत्काल शांत हो जाती है, उसी प्रकार इस महामंत्र रूपी सुधा-सरोवर से जो मनुष्य नव पदों में से किसी एक पद रूपी अथवा पद के किसी अवान्तर पद वा अक्षररूपी अल्प सुधा मात्रा का भी यदि ध्यान रूप में सेवन करेगा तो उसका अभीष्ट तत्काल सिद्ध होगा। यह मंत्र एक सर्वोत्कृष्ट अमूल्य विशिष्ट रत्न है जिसका प्रभाव और यथोक्त अनुष्ठान जन्यफल प्राप्त होता है।

———

"सर्व सावध योगानां त्यागश्चारित्रमुध्यते"

सर्वथा, सब प्रकार से मन-वचन-काया के अशुभ योगों-प्रवृत्तियों के त्याग को चरित्र कहते है।

न हि सुखं सुखेन लभ्यते।
सुख, सुख से नही मिलता। महावीर परमात्मा ने 12।। साल तक घोर तप की साधना की बाद में कैवल्यलक्ष्मी प्राप्त हुई थी।

जयपुर जैन श्वे० तपागच्छ संघ में हुये चातुर्मासों की तालिका

★ श्री मनोहरमल लूनावत

क्रम सख्या	विक्रम सम्वत्		नाम श्रमण समुदाय जिनकी निश्रा में चातुर्मास हुआ ।	
(१)	२०२०	परम पूज्य	मुनि श्री जिन प्रभ विजय जी	महाराज साहब
(२)	२०२१	"	गणिवर्य श्री दर्शन सागर जी	"
(३)	२०२२	"	यतिजी महाराज	"
(४)	२०२३	"	मुनिराज श्री विशाल विजयजी	"
(५)	२०२४	"	मुनिराज श्री विशाल विजयजी	"
(६)	२०२५	"	मुनिराज श्री भद्रगुप्त विजयजी	"
(७)	२०२६	"	पन्यास भानु विजयजी	"
(८)	२०२७	"	पन्यास विनय विजयजी	"
(९)	२०२८	"	साध्वी श्री निर्मला श्री जी	"
(१०)	२०२९	"	साध्वी श्री निर्मला श्री जी	"
(११)	२०३०	"	साध्वी प्रवर्तनी श्री दमयन्ति श्री जी	"
(१२)	२०३१	"	पन्यास श्री विशाल विजयजी	"
(१३)	२०३२	"	मुनिराज नयरत्न विजयजी	"
(१४)	२०३३	"	मुनिराज श्री प्रीति विजयजी	"
(१५)	२०३४	"	पन्यास न्याय विजयजी	"
(१६)	२०३५	"	पन्यास श्री न्याय विजयजी	"
(१७)	२०३६	"	मुनिराज धर्म गुप्त विजय जी	"
(१८)	२०३७	"	पन्यास पदम विजयजी	"
(१९)	२०३८	"	आचार्य श्री ह्रींकार सुरिश्वर जी	"
(२०)	२०३९	"	आचार्य श्री मनोहर सुरिश्वरजी	"

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ जयपुर मे सदैव बडे बडे त्यागी, तपस्वी एव प्रकाण्ड विद्वान आचार्यो, पन्यासो एव मुनिराजो के चातुर्मास हुये हैं। यही नही यहा अब तक प्राय सभी तपागच्छ के प्रमुख सघाडों के साधु साध्वियों के चातुर्मास बडे ठाठ बाठ से हुए हैं। इस प्रकार जयपुर जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ किसी भी एक सघाडे मे बन्धा हुआ नहीं है। आज भी यहा तपागच्छ के किसी भी सघाडे के साधु साध्वियो का बडे आदर सत्कार से स्वागत होता है और सघ की यही इच्छा रहती है कि किसी भी सघाडे के त्यागी, तपस्वी एव विद्वान साधु साध्वी का चातुर्मास हो। □

हिम्मत से हेमाड्गी

साध्वी श्री हेमेन्द्र श्री जी महाराज सा०

संसार में अनादिकाल से आत्मा दौड़ रही है। दौड़ते मानव से महापुरुष पूछ रहे है, क्या पूछ रहे हैं? विश्व से अशान्त बने मानव को देख कर उन तारक महापुरुष की चक्षु सजल हो गई। करुणा से हृदय द्रवित हो गया। बोल उठे! "अरें ओ! संसार रसिक? प्रमाद पागल? श्रम श्रमिक? भोगासक्त मानव तुझे क्या चाहिये, कितना चाहिये, कितने दिन के लिये चाहिये?" लेकिन उस मुसाफिर के पास इतना समय कहां था कि वह उन ज्ञानी की बातें सुनें! दौड़ता रहा, दौड़ता रहा। यथापि वह शान्त नही बन पाया। कृपानिधि महापुरुष पुनः उसे कहते है," ओ दौड़ने वाले जरा मोड़ ले, जीवन को जोड़ले, संसार से दिल तोड़ ले।" तुझे देखकर मुझे दया आ रही है। मेरी पूर्व कहानी मुझे याद आ रही है। मै भी तेरे जैसा इस संसार में गोते खा रहा था। कहां से कहां जाना चाह रहा था, किन्तु नहीं पाया किनारा, नहीं पाया किनारा, रहा मै बिचारा डूबते इस भव-सागर से मुझे ज्ञानी ने पुकारा 'हे भव के मुसाफिर, तू मर जायगा, अरे! तू हार जायगा। जहां कांच के टुकड़े पड़े है वहां तू रत्नों की खोज कर रहा है। कैसे पायेगा, कहां से पायेगा, कितना पायेगा। अरे भैया" मूलो नास्ति कुत्रः शाखा।

"मूल है, नहीं तो पौधा, वृक्ष, शाखा, प्रशाखाएं कहां से आयेगी। जब शाखा प्रशाखा नही है तो फल-फूल कहां से आयेंगे? पागल, मूर्ख अरे अज्ञ, जरा तू सोचले! व्यर्थ नही दौड़ना। जीवन को वृथा नही निचोड़ना है। जीवन में से कुछ सोरना है, जोड़ना है, इकट्ठा करना है।' उस परम कृपालु परमात्मा की वाणी रूपी पानी का स्वाद जैसे ही मेरे हृदय मे व्याप्त हुआ, प्राप्त हुआ, अन्तःकरण से नाद हुआ। क्या मैं वृथा घूम रहा हूं? क्या मै पागल हूं? क्या मै अज्ञ हूं? नहीं, नही, मैं पागल अज्ञ कैसे? मेरे मन मन्थन का पार नही रहा। सोच नही पाया, मै कौन हूं। मेरी चिन्तन की चांदनी को जब मै चमका नहीं सका तो मैने एक चित्तकारी की। दौड़ पड़ा उस तारक की शरण में। रो पड़ा, सो गया उसके चरण में। उसने मुझे पुनः आवाज दी, 'ओ दीर्घ प्रमादी! जीवन रोने के लिये नही, खोने के लिये नहीं, सोने के लिये नही, अपितु जीवन बोने के लिये है। जैसे कण से मण पा सकता है। वैसे हिम्मत से, मेहनत से जाकर सिद्धि पायेगा। क्योंकि 'उद्यमेन कार्याणि सिध्यन्ति, नतु मनोरथे" 'हिम्मत से हेमाड़गी' बन जायेगा। साधना से सिद्धि को पायगा।

समय साधले, समय के मोती होते है। स्वाति नक्षत्र में बरसात का पानी अगर सीप के मुंह में जाय तो मोती हो जाता है। कूप, तालाब, नदी में जाये तो हजारों की ज्योति बन जाता है। सर्प के मुंह में जाय तो वही पानी कइयों के जीवन की सौठी बन जाता है। खेत में गिर जाय तो अनाज देता है और गन्दी नाली मे जाये तो दुर्गन्ध देता है। भाई समय अनमोल है। अगर समय को पहचान लिया तो पल के मोती बनते देर नही।

एक दृष्टान्त है किसी नगर मे एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी रहते थे। जीवन तो दोनो का दाम्पत्य अवस्था मे था, किन्तु पति-पत्नी के बीच अजब सा व्यवहार था। नर प्रधान नहीं, नारी प्रधान जीवन था। पति पत्नी के बीच चूहे बिल्ली का सा व्यवहार था। दोनो छत्तीस (३६) के अक मे चलते थे, तीन (३) का मुह उधर तो छह (६) का मुह इधर। एक कहे रात तो दूसरा कहे दिन। एक कहे धूप तो दूसरा कहे चुप। इस प्रकार दोनों का दिनभर द्वन्द चलता रहता था। उनका ससार श्मशान था। तथापि ब्राह्मण विद्वान होने से नादानी छोड देता था। ब्राह्मण ज्योतिष मार्तण्ड था। अत हमेशा पचाग देखा करता था। दुनियाँ की कहावत है कि लक्ष्मी सरस्वती दोनो एक जगह साथ नही रहती। अगर साथ रह गई तो समझो उस घर की पुण्य प्रबलता ही भाग्य की सफलता है। वहा भी ऐसी ही स्थिति थी। सरस्वती तो सिद्ध थी लेकिन लक्ष्मी रूठी हुई थी। ब्राह्मण जब जब ज्योतिष पचाग देखने बैठते तब तब ब्राह्मणी की गर्जना होती। कहते हैं गर्जे सो बरसे नहीं। जो गर्जता है वह बरसता नही। लेकिन यहा तो सब ढग बदला हुआ था। ब्राह्मणी तो गर्जन के साथ ही बरस जाती थी। बडे कठोर शब्दो में अपने पति से कहती, बस बैठ गये पचाग की पचायत में। घर के छोरा घट्टी चाटें, दुनिया को जलेबी बाटे। जो ऐसा काम करता है उसे मूर्ख कहा जाता है, उन मूर्खों मे आपका भी स्थान है। रोजाना ग्रहबल, ताराबल आते रहते हैं। उसके बल में ही खल जाते हो। अरे जरा अक्कल लगाओ, धन लाओ तो शाति से रोटी खायें। ब्राह्मणी की आवाज सुनकर ब्राह्मण देवता बडी शान्ति से कहते चिन्ता न करो, समय आयेगा तब रोटी तो क्या मोती से सजा दूगा। ब्राह्मणी कहती, बस बस बन्द करो अपना भाषण। मुझे मोती नहीं रोटी चाहिये। ब्राह्मण कहता देखो जी समय कहकर नही आता, समय की सिद्धि है। क्योकि कवि भी कहते है—"समय-समय बलवान है, समय समय की बात। किसी समय का दिन बडा तो किसी समय की रात।।

अत ऐसा नही सोचो कि समय आयेगा ही नही। लेकिन उस ब्राह्मणी को अपने स्वामी पर विश्वास कहा था, यकीन कहा था, श्रद्धा कहा थी। ऐसी खटपट कई बार घर मे चलती रहती थी। ब्राह्मण ब्राह्मणी से, ब्राह्मणी ब्राह्मण से व्यथित दुखी थी। समय निकलता रहा, एकाएक एकबार ब्राह्मण अपनी दैनिक दिनचर्या के मुताबिक पचाग देख रहे थे। अचानक उन्होंने सोनेरी पल पाई। उन्ह मन ही मन मुस्कुराहट आई कि ब्राह्मणी ने देखा देखते ही गर्जी, कहने लगी क्या है आज? बडे आनन्दित हो रहे हो, बस बैठे-बैठे इसी में समय खो रहे हो। ऐसा कौन सा बल आ गया कि आप सबल हो गये। ब्राह्मण देवता कहने लगे-भाग्यवान सुनो तो सही। आज छत्तीस (३६) को मिटादो, त्रेसठ (६३) को बनादो। बस मेरी इतनी सी बात मानलो। ब्राह्मणी कहने लगी, बस करो। गले की घण्टी नही बनो। ब्राह्मण कहने लगा, देखो जी आज तक तुमने मेरी बनकर भी मेरी बात नही मानी, लेकिन आज मानलो। समय बडा सुन्दर है। अगर साध लिया तो ज्वार के भी मोती बन जायेंगे।

ब्राह्मणी कहने लगी, आपकी बातें अनहोनी है। आप तो क्या आपके पूर्वज भी अगर श्मशान से उठकर आ जाये तो भी ज्वार के मोती नहीं बनते। हो सकता है कि आप इस पचाग की पचायत में पागल हो गये हो, लेकिन मैं अभी इतनी पागल नहीं हुई कि आप की बात मानकर लोगो मे हसी उडवाऊ। ब्राह्मण अपनी पत्नी को समझाता रहा कि आज रात्रि का 12 बजे का समय इतना सुन्दर है कि इसमे मैं मन्त्र साधना करु और स्वाहा बोलकर घण्टी बजाऊ, तुम उबलते पानी में ज्वार डालदोगी तो ज्वार के मोती बन जायेंगे। सुनते ही ब्राह्मणी बोली मोती नहीं घुघरी बन जायेगी। ब्राह्मण बहुत दुखी हुआ। दीवार के भी कान होते है। दो बन्दरो की लडाई मे बिल्ली ने फायदा उठाया। पति-पत्नी के वार्ता

लाप को पडौस की सेठानी ने सुना, उसको विश्वास था कि चाहे पृथ्वी पलट जाये लेकिन ब्राह्मण के वचन वृथा नही होते। उसे भी चार चार पुत्र व चार वधुएं थी। ब्राह्मण की बातें सुनतें ही उसने अपने बेटों तथा बहुओं से कहा कि आजतक आराम से खाया, सुख से सोये किन्तु आज घर के आँगन में गंगा आ रही है। अगर हाथ धो लिए तो सफलता निश्चित है। ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी का वार्तालाप बेटे-वहु को कह सुनाया। साथ ही यह भी कहा कि अपने घर मे ज्वार के भण्डार भरे है, मोती हो गये तो ठीक नही तो गरीबों को घुघरी खिलायेंगे। इधर ब्राह्मण भी अपनी गृहलक्ष्मी को समझाकर मंद साधना करने बैठ गया। सम्पूर्ण मंत्र साधना करने के बाद जब उसने घंटी बजाई और उठ कर देखा तो, बोल उठा अरे ! अभी तक सो रही हो ? कहा था न कि घंटी बजने के साथ ही ज्यार गर्म पानी में डाल देना। ब्राह्मणी कहने लगी अभी क्या बिगड़ा है लो डाल दी। कुछ ही क्षण में घुघरी बन गई। ब्राह्मणी की गर्जना चालू हो गई। मैने पहले ही कहा कि आपके पूर्वज भी आ जाय तो भी मोती नही बनेंगे। ज्वार को पानी मे झोखीं, न तो खायी, न खाने दी। ब्राह्मण बेचारा क्या कहें, निराशा भरे स्वर में अपने भाग्य की कहानी गाने लगा—

"बिना पूण्य नहीं पाइये, भली वस्तु का जोग।
दाख पके, जब काग के, होय कण्ठ में रोग" ॥

पुण्य विना इच्छित वस्तु कैसे प्राप्त हो सकती हो क्या मरुधर में कभी कल्पवृक्ष हो सकता है। ऐसा ही मेरे लिए हुआ। इस प्रकार शोक सागर मे डूबते हुए ब्राह्मण ने सम्पूर्ण रात्रि बड़े कष्ट से बिताई उसके दुःख की व्यथा रात्रि देख नही पाई, बिन पंख उड़ गई। और कवि भी कहता है कि :

'पड़ी-पड़ी टूटी नहीं। ककड़ा थया चार।
दिन पांखे उड़ गई। चतुर करों विचार ॥"

जैसे ही प्रातःकाल हुआ कि उसने कोई अनोखा दृश्य देखा। सोलह श्रंगार से सज्जित अपनी बहु के साथ सेठानी ब्राह्मण के द्वार पर मुक्ताभरा थाल लिए चली आई। ब्राह्मण के सामने नतमस्तक कर के मोती भरी थाली उपहार दी। साश्चर्य, विश्वमोहनी मुस्कान के साथ मंगलाशीष रूप उपहार, सेठानी को देते हुए ब्राह्मण पूछने लगा कहो जी आज कौन सा पर्व त्यौहार है। अतः मगल प्रभात में आपका पदार्पण हुआ। सोचने लगे मोती के ज्वार होने की बात मेरे अलावा अन्य कोई भी जानता नहीं क्या मै स्वप्न देख रहा हू। उन्होंने सेठानी से कहा आपके नतमस्तक से प्रसन्न हू। किन्तु आपके आगमन का अभिप्राय मैं समझ नही पाया, अगर आप उचित समझें तो रहस्य प्रकट करें। ब्राह्मण के आग्रह पर सेठानी ने सविस्तार रात्रि की घटना बता दी। साथ ही यह भी कहा कि इस सम्पूर्ण सम्पत्ति के स्वामी आप ही है किन्तु लोभवश आपको फूल नही, फूल की पाखुड़ी समर्पित कर रही हूं कृपया अमृत कृपा वरसा कर इसे स्वीकार कर मुझे अनुग्रहित कीजिये। तत्क्षण ब्राह्मण ने अनुकूल समय समझकर पत्नि को बुलाया, भट्टी मे भूंजते चने के समान भड़-भड़ ध्वनि करती हुई ब्राह्मणी आकर कहने लगी, क्या बाकी रह गया ? कौन से नक्षत्र का बल आया ? शान्तस्वर मे ब्राह्मण ने कहा—प्रिये, नक्षत्र तो 'भरणी' आया। शान्त होकर बैठो और अनमोल चीजें देखो। दत्तचित्त मन्त्रमुग्ध होकर ब्राह्मणी मुक्ता-थाल को देखने लगी। एकचित्त अपनी पत्नि को देखकर ब्राह्मण ने अपनी व्यथा कथा प्रकट की और कहा भगवन्त कृपा जहां होती है वही काम-धेनु आती है। अन्यथा नही।

हमारी भूल से ही जीवन धूल हुआ। देखो मैंने रात्री में जो ज्वार के मोती बनाने का कहा

था, वही मोती की ज्योति तुम्हारे समक्ष सेठाणी लाई है। पूर्ण घटना सुनते ही ब्राह्मणी रोते-रोते बोली, आप क्या कह रहे है ? क्या आपका कथन सचमुच सही था ? बीच मे ही सेठाणी बोल उठी हे ब्राह्मणी प्रिये ब्राह्मण का कथन सही था। इनकी प्रभावित शक्ति मे मेरा मन सिन्धु इतना आनन्द विभोर हो रहा है, जैसे सिन्धु मनोहर इन्द्र को देखकर हर्षित होता है । तद्रूप मोर बिन्दु स्वरूप भेंट लेकर चली आई। जो आपके समक्ष मौजूद है। आप दोनो की बातें सुनकर, मैंने सपरिवार प्रयास किया, यहीं प्रकाश है जो आपके सामने मौजूद है। इतना सब सुनते ही ब्राह्मणी फूट फूट कर रोने लगी तथा आर्द्र स्वर मे कहने लगी, मुझे क्या पता था कि मेरे स्वामी सर्वशक्ति है। शक्तिमान की शक्ति मैंने नही पहचानी अपने पति के चरणो मे साक्षात चरण पक्षालती प्रार्थना करती हुई कहने लगी, मैं, अज्ञानी नाथ आपको नही पहचान सकी। अत हे ज्ञानी, अब ऐसा समय आये तो मुझे कहना । ब्राह्मण कहने लगा हे प्राणप्रिय अब वह अद्वितीय असाधारण समय पुन आना असम्भव है।" तथापि देवशात् समय भले आ जाये। किन्तु हे पामर, गया जीवन आना असम्भव है। हे हतोत्साही अभी भी हिम्मत की कीमत समझलें । उस त्रिलोक्यनाथ, भवभव भजन भगवान की वाणी सुन कर मैंने चेतना पाई।

अत सर्वसिद्धि को मैं प्राप्त कर चुका है। और तुम जैसे मुसाफिर को देखकर मुझे दया आ गई। मेरी आवाज निकल गई कि तू क्यो अटन कर रहा है ? क्या रटन कर रहा है 'हे बेटे' इस प्रकार चचल अन्त करण से इस ससार समुद्र में घूमघूम कर तू थक जाएगा। अगर आत्मखजाने को प्राप्त करना है तो स्थिरता को धारण कर खजाना मिलने मे देरी नहीं होगी । अभी भी हिम्मत को धारण कर। खजाना मिलने मे देरी नहीं होगी। अभी भी हिम्मत को धारण करके प्रभु की नित्य नवनवायमान सूर मुनिमन मोहनी परमात्म वाणी रूप पानी का पान करके-हेमाङ्गी रूप अलौकिक आत्म, सोम्यसागर में मग्न होकर सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, सर्वेश्वर सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार इन्सान महापुरुष की हमदर्दी को पहचान कर शीघ्र ही अप्पा मो परप्पा पद प्राप्त करें। यही शुभेच्छा ।

पक्षपातो न मे धीरे, न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचन यस्य, तस्य कार्य परिग्रह ॥

—हमे न तो भगवान महावीर का पक्षपात है और न ही कपिलादी ऋषियो के प्रति द्वेष है, किन्तु जिसका वचन युक्ति युक्त हैं, वह स्वीकार्य है।

परिवर्तन

—श्रीमती शांति देवी जैन (लोढा)

कहां गए वे स्वर्ण दिवस हा ! कहाँ गए सुखमय संगीत ?
कहाँ गईं वे भोली बातें, कहां गए दिन परम पुनीत ?

\+ + +

प्रणय द्वेष का ज्ञान नहीं था, बाल-सुलभ था हृदय सरल
सुधामयी सब सृष्टि बनी थी, नहीं दिखाता कहीं गरल ॥

\+ + +

उन्नति हो अथवा हो अवनति, तनिक न चिन्ता थी इसकी,
शनैः शनैः क्यों सरल हृदय में यह विषमय लतिका विकसी ।

\+ + +

पाप–वृत्ति का उदय हुआ अरु द्वेष-दनुज सब जाग उठे,
मेरी स्वर्णमयी दुनिया में क्यों ये विषमय राग उठे ।

\+ + +

हुआ आगमन क्यों पतझड़ का, मेरे मधुमय जीवन में ?
विलग किया सुन्दर उपवन से पटका आज विजन वन में ।

\+ + +

जीवन मेरा भार बन गया, उर से निकल रही निःश्वास,
मन्द पवन ने बोझिल होकर, धूमिल किया निर्मलाकाश ।

\+ + ×

निखिल सृष्टि का यही नियम है, प्रतिपल होता परिवर्तन,
चक्र सतत घूमा करता है, होता है उत्थान–पतन ।

———

आत्म-सिद्धि एवम् मन की शक्ति

□ श्री शिखर चन्द पालावत

अनादि काल से ससार मे भ्रमण करते हुए बडे ही पुण्योदय से जीव को यह मानव जीवन, निरोग शरीर उत्तम कुल, अच्छा घर वार, जैन धम सुसगति आदि साधन प्राप्त हुये हैं। मनुष्य को प्रमोद छोडकर मानव-जीवन को सार्थक बनाने के लिए धार्मिक क्रियाओ के पालन का सकल्प करना चाहिये।

आत्म कल्याण के मार्ग मे भक्ति का अत्यन्त महत्व हैं। प्रभू दर्शन, पूजन, प्रार्थना, स्तुति, स्तवन आराधना, उपासना, जप, तप, श्रद्धा, विनय, वन्दना-आदि सब भक्ति प्रदेशन के ही रूप हैं। भक्ति में मनुष्य को अपना मन सब ओर से हटा कर अपने आराध्य देव की ओर केन्द्रित करना पडता है। सब पापो से हटाकर चित्त को पवित्र करने की विधिया हैं। अन इस प्रकार की सभी क्रियाओ को भक्ति का रूप दिया जा सकता है।

तीर्थ कर भक्ति निर्वाण प्राप्ति का साधन है भगवान की मूर्ति के समक्ष वह भावना इष्ट प्रार्थना का रूप ले लेती है। मूर्ति का सहारा लेने का कारण यह है कि हमारा मन आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि से बचकर वीतरागता मे अटके। प्रार्थना की सीमा इष्ट (मोक्ष) की ही है, सासारिक नहीं, मुक्ति मे सहायक है।

गृहस्थ मे मनुष्य को प्रभु पूजन के लिए प्रथम स्थान दिया है। प्रभु भक्ति एव भगवान की स्तुति से विघ्नो का नाश होता है। सब प्रकार के दुख दरिद्र भूत-प्रेत भाग जाते है एव दुर्गति को दूर करने, पुण्य को बढाने तथा भक्त की मुक्ति लक्ष्मी की प्राप्ति कराने में समर्थ है।

कोई शका करे कि भगवान तो राग-द्वेष रहित होते हैं तो उनकी भक्ति और स्तवन से क्या लाभ है?

भक्तामर स्तोत्र में आचार्य मानतुग भगवान ने इस बात को इस प्रकार कहा है कि जिस प्रकार सूर्य की किरणो द्वारा रात्रि का समस्त अधकार नष्ट हो जाता है इसी प्रकार भगवान के दर्शन पूजन स अनेक भक्तो के बधे हुए पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं जिस तरह मयूर के आते ही चन्दन के वृक्ष से लिपटे हुए साप ढीले पडकर वहा से भाग जाते हैं उसी प्रकार भगवान का ध्यान करने से बडे से बडे कर्म बन्धन क्षण भर मे ही ढीले और शक्तिहीन हो जाते हैं।

यद्यपि जिनेश्वर भगवान कुछ देते नही पर उनकी भक्ति से पाप क्षय और पुण्य सचय होता होता है। मन को एकाग्र कर प्रभु दर्शन से राग द्वेष से छुटकारा मिलता है और कर्मो की निर्जरा होती है।

बड़े ही पुन्योदय से इस वर्ष भी **मधुर वक्ता राजस्थान केशरी** आचार्य भगवन्त श्रीमद्विजय मनोहर सूरीश्वर जी महाराज साहब चातुर्मास हेतु यहां पधारे है । जो प्रतिदिन अपने मधुर वाख्यान में हमें प्रेरणा देते हुए अपने प्रवचन में कहा कि मनुष्य सब प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि उसमें विवेक है, विवेक विहीन मनुष्य पशुतुल्य है । अपनी मुक्ति की प्राप्ति के लिए ही हम प्रभु की पूजा रचाते है । यह भी मनुष्य का स्वार्थ है । हमारी अनादि काल की जो मैल लगी है उसे हटाने के लिए ही प्रभु को जल व दूध से नहलाते हैं । अनादि काल की बदबू को नष्ट करने के लिए केशर चंदन चढ़ाते हैं । हे प्रभु यह जो विषयों के तीर लगे हुए है उनसे बचने के लिए ही सुन्दर पुष्प चढाता हूं अनादिकाल के कर्म नष्ट हो जावे इसीलिए हे भगवान धूप को जलाता हूं । हे वीतरागदेव दीपक की ज्योति जैसे प्रकाशमान होती है उसी प्रकार मेरे हृदय मे भी ज्ञान की ज्योति हो इस कारण दीपक जलाता हूं । भगवान मुझे अक्षय सुख की प्राप्ति हो इसलिए चांवल चढ़ाता हूं । हे प्रभु मेरी पूर्णतया तृप्ति हो और मुक्ति पद प्राप्त हो इसी कारण मिठाई चढ़ाता हूं । हे नाथ, मै मुक्ति फल पाने की तमन्ना रखता हूं इसीलिए बढ़िया फल चढ़ाता हूं ।

हे देवाधिदेव, मेरे अष्ठ कर्मो को मिटादे और मोक्ष पद की प्राप्ति हो इसी कारण यह अष्ट प्रकारी पूजा रचाता हूं ।

धर्म का प्रत्यक्ष दर्शन आचरण में होना चाहिए कथनी व करनी का अन्तर भेद धर्म मिटाना है और ये ही जीवन की सच्ची साधना है । जो भी धर्म की साधना करता है उसे किसी का भय नहीं धर्म निर्भय बनाता है, वीर बनाता है और व्यक्ति महावीर बन जाता है ।

भगवान महावीर के अहिंसा उपदेश से ही मानवता बचेगी विश्व में शान्ति होगी । धर्म के बिना मानव का कल्याण नहीं हो सकता । जैन समाज आडम्बरों में प्रतिवर्ष लाखों रुपये खर्च करता है । समाज में कुप्रथा दहेजप्रथा रूढ़ीवादिता मिटानी होगी । समाज में जो गरीब परिवार हैं विधवा बहिनें है उन्हें सहायता करना होगा तब ही समता भाव होगा । बच्चों मे शिक्षा एवं धार्मिक शिक्षा का प्रचार कराना होगा । समाज के नवयुवकों को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये अपने ही मूर्ति पूजक श्री संघों में अलग अलग गच्छो के आपसी झगड़ों को, मन मुटाव को मिटाना चाहिये ।

पर्यूषण-पर्व जो अपना सर्व श्रेष्ठ पर्व माना जाता है, मुझे बहुत दुख है यह कैसी धार्मिकता है कि हम मन्दिर उपाश्रय के बाहर तो गले मिलकर खिमत खामणा करते है बल्कि आपस में बेटी व्यवहार खाना पीना सब कुछ करते है किन्तु मन्दिर उपाश्रय जैसे धार्मिक स्थानों पर झगड़े करते है क्या इस के निवारण का कोई उपाय नही ?

मैं सभी श्री जैन धर्म के आचार्य भगवन्तों, मुनिराजों साधु साध्वियों को समाज के कर्णधार श्रावको से अपील करूंगा कि वे ऐसे स्थानों पर चातुर्मास करें आपसी झगड़ों को मतभेदों को, समाप्त करने की ओर अवश्य ध्यान दें । पुनः मेरा अनुरोध है इस ओर अवश्य ध्यान दें ताकि समाज में प्रेम भावना सहित कंधे से कंधा मिला कर आगे बढ़ सकें ।

———

इतिहास मुंह बोल रहा है

ऐतिहासिक शिलालेखयुक्त अति प्राचीन मालपुरा देरासर का भव्य नवनिर्माण

□श्री हीराचन्द वैद

मालपुरा देरासर का शिलालेख

सवत् 1672 वर्षे तपागच्छाधिराज भट्टारक श्री 5 विजय सेनसूरीश्वरणाम् आचार्य श्री 5 विजय देव सूरि प्रभृति साधु ससेवित चरणार विदाना विजयमान राज्ये पातिशाह श्री अकबर प्रदापितोपाध्याय पद धारक श्री शत्रुजय करमोचनादिनेक सुकृत कारक महोपाध्याय श्री भानुचन्द्र गणि नाम्न पदेशात् अष्टोतर शतावधान साधन प्रमुदित पातिशाह श्री अकबर प्रदत्त खुशफहमादि नाम्ना प सिद्ध चद्राना चैत्य भूमि ग्रहणादि महोधमेन च सा० वागा प्रमुख मालपुरीय सघेन श्री चन्द्रप्रभाप्रसाद कारित लि० लालचंद्र गणिछना सुत्रधरी पर सा०"

जयपुर नगर से 100 कि मी दूर जयपुर-उदयपुर राजमार्ग पर मालपुरा नगर स्थित है। यह इस क्षेत्र की अच्छी व्यापारिक मडी है।

यहा पर दो मदिर व एक दादावाडी स्थित है, हजारो की सख्या में प्रतिवर्ष यात्री दूर दूर से आते हैं।

यहां का श्री मुनिसुव्रत स्वामी का देरासर अति विशाल होते हुए भी अत्यधिक जीर्ण शीर्ण स्थिति मे था। करीब 3 वर्ष पूर्व पू० साध्वी जी श्री विचक्षण श्री जी महाराज सा० की प्रेरणा से एक समिति बनाकर इसके जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ कराया गया। प्रारम्भ मे साधारण रूप मे कार्य कराने का निश्चय हुआ पर इस देरासर के 5 फीट लम्बे उपरोक्त शिलालेख से इस स्थान की ऐतिहासिकता प्रकट मे आई।

इतिहास साक्षी है कि मुगल बादशाह अकबर के निमन्त्रण पर जगद्गुरु विजय हीर सूरीश्वर जी महराज गुजरात से सिरोही, चित्तौड, मालपुरा, सागानेर (जयपुर के निकटस्थ स्थल) होकर ही आगरा पधारे थे। उस वक्त ये क्षेत्र शासन की जाहोजलाली के प्रतीक थे।

मालपुरा भी उस काल में उत्कर्ष पर था, कहते हैं उस वक्त यह क्षेत्र साधु भगवन्तो के इस क्षेत्र में विचरण नही करने से धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त करता गया। सेठ आनन्द जी कल्याण जी द्वारा प्रकाशित जैनतीर्थ सर्व सग्रह ग्रथ अनुसार वि० स० 2010 मे इस देरासर में पाषाण की 33 एव धातु की 46 प्रतिमायें थीं। आज वहा पाषाण की केवल 5 प्रतिमायें विद्यमान हैं।

करीब 8 हजार वर्ग फीट के इस भव्य स्थल में 3000 वर्ग फीट में देरासर तथा इतने ही में उपाश्रय बना हुआ हैं।

गत तीन वर्षो से देरासर का जीर्णोद्धार चालू है। हमारी प्रमुख पेढियों ने खूब-खूब सहकार किया है। श्रेष्ठियों की ओर से व्यक्तिगत सहयोग भी काफी सुन्दर मिला है। सब ही समुदायों के आचार्य भगवन्तों ने इस कार्य को सम्पन्न कराने में जो अपार व अनूठी निश्रा प्रदान की है समिति उससे कभी उऋण हो ही नहीं सकती। देश के कौने-कौने से संघों एवं भाग्यशालियों ने दिल खोलकर उदार हृदय से मदद की है। वह राशि 5 लाख से ऊपर पहुंच चुकी है।

अब तक इस भव्य सहयोग से 50 फीट ऊंचा गगन चुम्बी शिखर पूरा आरस (मकराने के पाषाण) का बन चुका है। मूल गम्भारा, शिखर का गम्भारा, रंग मण्डप, शानदार मूलद्वार, श्रृंगरछत्री आदि सब आरस के पाषाण से निर्मित हो चुके हैं। तीर्थो के छः वृहद पट्ट लग चुके हैं। भगवान का प्रवेश मूल गम्भारे में हो चुका है। भमती इतनी बडी व प्रकाशमान है कि उसमें जैन कला चित्र दीर्घा लगाने का निश्चय हो चुका है। करीब 300 वर्ग फीट की इस दीर्घा में सारे भारत के जैन तीर्थो के भगवन्तों के बहुमुखी चित्र एवं पूर्ण ऐतिहासिक वर्णन प्रदर्शित किया जाएगा। सामग्री एकत्रित की जा चुकी है। यह अपने ढंग की अनूठी व प्रथम योजना होगी जो जैन, जैनेतर विशेषकर नई पीढ़ी व प्रवुद्ध वर्ग के लिए अति लाभकारी सिद्ध होगी।

चतुर्मास बाद शुभ मोहर्त में प्रतिष्ठा का भव्यातिभव्य प्रसंग उपस्थित होने वाला है।

इस देरासर के लिए एक अनूठी उपलब्धि है करीब एक हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन 10 भव्य व विशाल प्रतिमाओं की प्राप्ति की। ये प्रतिमायें भी यही विराजमान की जावेंगी।

साथ ही लगे उपाश्रय का जीर्णोद्धार भी प्रारम्भ हो गया है। उसकी नीवों में से शिखर के खंड एवं जोगणी की मूर्तियां आदि प्राप्त हुई है। पुरातत्वज्ञों ने इन्हें एक हजार वर्ष पुराना माना है। इससे यह भी कल्पना होती है कि यह देरासर व स्थान महाराजा कुमारपाल के समकक्ष का हो।

इस सारे निर्माण कार्य के सम्पन्न होने के बाद भी सारे काम को पूरा कराने में करीब 2 से 3 लाख रुपये के सहयोग की और आवश्यकता है। निश्चित ही यह स्थान इस सारे क्षेत्र मे अपने ढंग का अनूठा, विशाल और शालीन होगा।

सारे शासन एवं श्रमण समुदाय पर जगद्गुरु का कितना उपकार है यह याद दिलाना छोटे मुंह बड़ी बात बन जाएगी पर इस स्थान के नव निर्माण में सब ही आचार्य भगवन्तों का पूर्ण सहयोग व समर्पण अपेक्षित तो है ही।

कम से कम पांच हजार रुपये प्रदान करने वाली पेढियों एवं एक हजार रुपया व्यक्तिगत रूप मे प्रदान करने वाले भाग्यशालियों के नाम शिलापट्ट पर साथ ही प्रतिष्ठा महोत्सव की कुंकुम पत्रिका में भी लिखे जावेंगे।

प्रेरक गुरु भगवन्तों के नाम भी विनम्रतापूर्वक शिला पट्ट पर अंकित किए जावेंगे।

कृपया सहायता राशि का चैक/ड्राफ्ट निम्न नाम से भिजवायें :

श्री मालपुरा देरासर जीर्णोद्धार समिति मालपुरा ☐

सम्पर्क सूत्र—श्रीहीराचन्द वैद जोरावर भवन, परतानियो का रास्ता, जयपुर

श्रद्धांजलियां

विगत वर्ष मे परमपूज्य आचार्य श्री धर्मसूरीश्वरजी म० सा० एव साध्वी श्री प्रियदर्शना श्रीजी म०सा० के असामयिक स्वर्गवास होने पर श्री जैन श्वे० तपागच्छ सघ जयपुर की महासमिति द्वारा पारित प्रस्ताव अविकल रूप मे :

★

आ० श्री धर्मसूरीश्वरजी म० सा० हेतु

युग दिवाकर, यशस्वी, शासन शिरोमणी, जैनाचार्य श्रीमद् विजय धर्मसूरीश्वरजी म० सा० के स्वर्गारोहण पर श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ सघ, जयपुर हार्दिक दुख एव सवेदना प्रगट करता है। वे इस युग की महान विभूति थे और समस्त जैन सघ को उन्होंने जो नेतृत्व प्रदान किया था उनसे जैन समाज की एकता एव गरिमा सारे विश्व मे प्रतिभासित हुई। उनका वियोग जैन शासन के लिए अवर्णनीय क्षति है।

शासनदेव उनकी महान आत्मा को शान्ति प्रदान करें एव समस्त जैन धर्मावलम्बियो सहित उनके प्रधान पट्टधर विजय यशोदेवसूरीश्वरजी म० सहित समस्त शिष्य मन्डल को उनकी क्षति सहन करने एव उनके द्वारा प्रवर्तित कार्यों को पूर्ण करने की शक्ति एव क्षमता प्रदान करें।

साध्वी श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म० सा० हेतु

"आगरा से मुरादाबाद मार्ग में भयकर दुर्घटना से ग्रस्त एव असामयिक व आकस्मिक देहावसान को प्राप्त जैनार्या श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म० सा० की आत्मा की शाति हेतु श्री जैन श्वे० तपागच्छ सघ, जयपुर शासनदेव से प्रार्थना करते हैं।

दुर्घटना ग्रस्त पू० साध्वीजी श्री जसवत श्रीजी म० सा० के शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने की भी शासनदेव से प्रार्थना करते हैं।"

इसी प्रकार पू० आचार्य श्री परमप्रभसूरीश्वरजी म० सा० एव आ० श्री मुक्तिसूरीश्वरजी म० सा० का भी इस वर्ष स्वर्गवास हो गया।

जयपुर में विराजित खरतरगच्छीय पू० साध्वी श्री जितेन्द्र श्रीजी म० सा० भी काल धर्म को प्राप्त हुई।

★

इसी समय में श्रीमान बुधसिहजी वैद एव श्रीमान केसरीमलजी पालेचा का भी देहावसान हुआ। आप दोनो ने ही श्री जैन श्वे० तपागच्छ सघ, जयपुर की वर्षों तक सेवा कर सघ की अभिवृद्धि एव उन्नति में भरसक योगदान किया था।

आप सभी के प्रति हार्दिक श्रद्धाजलि समर्पित है।

—सम्पादक मडल

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

वार्षिक विवरण सन् १६८१--८२

(महासमिति द्वारा अनुमोदित)

प्रस्तोता—श्री मोतीलाल भडकतिया, सघ मन्त्री

राजस्थान केसरी, निडर वक्ता परमपूज्य आचार्य श्री 1008 श्रीमद्‌विजय मनोहर सूरीश्वर जी म० सा०, मुनि श्री रत्नसेनविजय जी म सा, उपस्थित भाइयो एव बहिनो,

नव-निर्वाचित महासमिति की ओर से इस श्रीसघ का वित्तीय वप 1981–82 का लेखा-जोखा लेकर मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हू ।

गत महासमिति द्वारा यह घोषणा की गई थी कि महासमिति के चुनाव का कार्य शीघ्र ही सम्पन्न कराया जावेगा ताकि नव-निर्वाचित महासमिति आगामी चातुर्मास की समय पर व्यवस्था कर सके । इसी की अनुपालना मे नवम्बर, 1981 में श्री माणिकलाल जी कानूगो को चुनाव अधिकारी नियुक्त कर चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी गई । चुनाव अधिकारी महोदय ने बहुत ही सुन्दर, शालीन एव सुचारु रूप से महासमिति के नव-निर्वाचन का काय सम्पन्न कराया और चुनाव की सम्पूर्ण प्रक्रिया पूर्ण होने पर दि 10 जनवरी 1982 को नव निर्वाचित महासमिति ने कार्य भार सम्भाला ।

चतुर्मास की स्वीकृति

महासमिति ने काय भार सम्भालते ही इस वप के चतुर्मास हेतु प्रयास प्रारम्भ किया । आचार्य श्रीमद्‌विजय कलापूर्ण सूरीश्वरजी म सा के पैदल यात्रीसघ के साथ नागेश्वर तीर्थ पधारने के कायक्रम को दृष्टिगत रखते हुए सवप्रथम उन्ही का चतुर्मास जयपुर मे कराने का निश्चय किया गया । पैदलयात्री सघ के राणकपुर से प्रस्थान के अवसर पर महासमिति की ओर से श्री रणजीत सिहजी भण्डारी एव श्री अजीतकुमार जी लोढा तथा सघ के अन्य सदस्य आचार्य श्री की सेवा में उपस्थित हुए और उनसे यह चातुर्मास जयपुर में करने की विनती की । तत्पश्चात् सर्वश्री कपिलभाई, हीराचन्दजी वैद, तरसेमकुमारजी जैन, मनोहरमल जी लूनावत एव शिखरचन्द जी पालावत उज्जैन मे पुन आचार्य भगवन्त की सेवा मे उपस्थित हुए और स्वीकृति की सम्भावनानुसार आचार्य भगवन्त के नागेश्वर पहु चने की तिथि पर जयपुर से एक यात्री बस भी वहा पहु ची और विनती की गई लेकिन चतुर्मास की स्वीकृति उज्जैन के लिए हो गई ।

तत्पश्चात अनेकानेक प्रयास किये गये और पूज्य मुनि श्री नयरत्नविजयजी म सा का चातुर्मास जयपुर हो सकने की सम्भावना के आधार पर श्री मोतीलाल भडकतिया एव श्री जसवन्तमलजी साड हसमपुरा तीर्थ पर उनकी सेवा मे उपस्थित हुए । चातुर्मास स्वीकृत भी हो गया लेकिन तदनन्तर मुनि श्री जयरत्नविजयजी म सा

की अस्वस्थता एवं अल्प समय में उज्जैन से जयपुर तक के अति लम्बे विहार की शक्यता सम्भव नहीं हो सकने से यह भी सम्भव नहीं हो सका।

इसके बाद सर्वश्री शिखरचन्दजी पालावत, रणजीतसिंहजी भण्डारी, सुभाषचन्दजी छजलानी एवं मोतीलाल भड़कतिया परमपूज्य आचार्य श्रीमद् विजय मनोहरसूरीश्वरजी म. सा. की सेवा में सिरोही नगर में उपस्थित हुए। चातुर्मास प्रारंभ होने में लगभग एक माह का अल्प समय ही शेष था और सिरोही से जयपुर तक की लगभग 500 मील की लम्बी दूरी तय करना कठिन ही नहीं दुश्वर होने से आचार्य भगवन्त स्वीकृति प्रदान करने मे संकोच अनुभव कर रहे थे। उसी समय परमपूज्य आचार्य श्रीमद् विजय सुशीलसूरीश्वरजी म. सा. भी वहां पर बिराजमान थे और जयपुर सघ के इस प्रतिनिधि मण्डल ने उनसे इस हेतु मार्गदर्शन एवं सद्प्रेरणा प्रदान करने का निवेदन किया। उन्होने जयपुर श्रीसघ पर अत्यन्त कृपा करके पूज्य आचार्य श्रीमनोहरसूरीश्वरजी म सा. को न केवल प्रेरित ही किया अपितु अपना निर्देश तक प्रदान किया कि आप जयपुर मे ही चातुर्मास करें। बिराजित पूज्य आचार्य भगवन्त न पू. आचार्य श्री सुशील सूरिश्वरजी मा. सा. की सद्भावना और निर्देश को मान देते हुये भीषण गर्मी, मौसम की प्रतिकूलता एव लम्बे मार्ग को स्वास्थ्य अनुकूल न होने पर भी 25 दिन मे उग्र विहार कर जयपुर पधारने की कृपा की है, उसके लिए जयपुर श्रीसघ आपका अत्यन्त कृतज्ञ एवं ऋणी है।

आचार्य भगवन्त का पदार्पण

जयपुर पधारने पर दि. 30 जून, 1982 को प्रातः 7-00 बजे चैम्बर भवन पर आपका समैय्या किया गया एव वहा से विशाल जुलूस जिसमे हाथी, घोड़े, ऊंट बैंडबाजे, भजन मण्डली सहित आपका नगर प्रवेश हुआ। नए दरवाजे से होकर बापू बाजार, जौहरी बाजार होते हुए जुलूस घी वालों के रास्ते में स्थित श्री आत्मानन्द सभा भवन पहुंचा। मार्ग में स्थान स्थान पर तोरण द्वार बनाये गये थे एवं स्थान स्थान पर गंहुलिया करके गुरु भक्ति की गई। आत्मानन्द सभा भवन पहुंचने पर आपके अभिनन्दन में सार्वजनिक सभा हुई जिसे आचार्य भगवन्त ने भी सम्बोधित किया।

इसी दिन आपके पदार्पण के उपलक्ष्य में सामूहिक आयम्बिल की आराधना एवं दिन मे श्री पार्श्वनाथ पंच कल्याणक पूजा का आयोजन किया गया। नगर प्रवेश जुलूस के अवसर की प्रभावना का लाभ श्री कपिलभाई के शाह ने लिया।

चातुर्मास

यह पहला अवसर है कि जब से आप पधारे है अखण्ड अट्ठम तप की आराधना चल रही है और सम्पूर्ण पांच माह तक अट्ठम तप की आराधना करने वाले भाई-बहिनों ने अपनी आराधना तिथियां निश्चित करा रखी है।

रविवार, दिनाक 11 जुलाई, 82 श्रावण वदी 5 को सूत्रजी वोहरने का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। 'धर्मरत्न प्रकरण' सूत्र वोहराने का लाभ श्री हीराचन्दजी ढड्ढा ने एवं "परिशिष्ठ पर्व" ग्रंथ वोहराने का लाभ श्री पारसदासजी चिन्तामणी जी ढ़ढ्ढा ने लिया तथा 11 विभिन्न ज्ञानपूजाओ का लाभ अन्य साधर्मी बन्धुओ ने लिया।

इसी दिन सन्तीकरम महापूजा का भव्य आयोजन सम्पन्न हुआ।

आचार्य भगवन्त के प्रतिदिन श्री आत्मानन्द सभा भवन में धर्म-रत्न प्रकरण एवं परिशिष्ठ पर्व पर आधारित अत्यन्त ओजस्वी, सारगर्भित एवं मार्मिक प्रवचन हो रहे हैं एवं आपकी विषय की तह तक पहुंच कर विशद् विवेचन करते हुए आधुनिक घटनाओं के परिपेक्ष में जिनेश्वर देव की वाणी के गूढ रहस्य को समझाने की शैली मे श्रोतागण

प्रभावित एव आल्हादित है। विभिन्न प्रकार की तपस्यायें भी चल रही हैं।

विगत चतुर्मास

गत वर्ष परमपूज्य आचार्य श्रीमद्विजय ह्रींकारसूरीश्वरजी महाराज साहब आदि ठाणा–4 एव पूज्य साध्वी श्री शुभोदयाश्रीजी म सा आदि ठाणा–5 का जयपुर मे चातुर्मास था।

गत विवरण प्रकाशित होने तक साध्वी श्री विभानयशाश्रीजी म सा के मास क्षमण की तपस्या चल रही थी। जिनेश्वरदेव की परम कृपा से आपके मास क्षमण की आराधना सानन्द सम्पूर्ण हुई एव भादवा सुदी–3 को देव दर्शन हेतु आपका शानदार वरघोडा निकाला गया। आपका आसन उठान का लाभ समाज की महिला वर्ग द्वारा लिया गया और वह दृश्य अपूर्व और अलौकिक था।

पू आचार्य भगवन्त की निश्रा में प्रभु पुजायें पढाने वालो का तो ताता ही लग गया। चतुर्मास काल मे 92 पूजायें पढाई गई एव पाच अष्ठान्हिका महोत्सव सम्पन्न हुए जिनमे भक्तामर महापूजन, वृहद शान्ति स्नात्र, ऋषि मण्डल नमिउण पार्श्वनाथ जैसी महापूजायें पढाई गई। कहा जाता है कि ऐसी वृहद् और महा पूजायें जयपुर मे निकट काल में कभी नही पढाई गई।

पूज्य आचार्य श्री की निश्रा में ही देवकुलिकाओ के कलशाभिषेक सहित अट्ठारह अभिषेक के कार्यक्रम भी सम्पन्न हुए।

चातुर्मास पलटवाने का लाभ श्री केसरीमलजी उमरावमलजी पनेचा ने लिया।

चतुर्मास पूर्ण होने पर पू आचार्य भगवन्त ने मेडता एव साध्वीजी म सा ने हिण्डौन के लिए विहार किया।

अन्य साधु साध्वी वृन्द

गत चतुर्मास के पश्चात् निम्नाकित साधु-साध्वी वृन्द का जयपुर पदार्पण हुआ और उनके विहार, भक्ति एव दर्शन व दन का सौभाग्य जयपुर श्रीसघ को प्राप्त हुआ—

1 साध्वी श्री शुभोदयाश्रीजी म सा ठाणा 5
2 साध्वी श्री प्रेमलताश्रीजी म सा „ 2
3 मुनिराज श्रीजिनहर्षविजयजी म सा „ 2
4 साध्वी श्री पुष्पाश्रीजी म सा , 2
5 साध्वी श्री निरजना श्रीजी म सा „ 2
6 मुनिराज श्री सुमतीसागर जी म सा „ 2
7 साध्वी श्री हेमप्रभाश्रीजी म सा „ 5
8 मुनिराज श्री निरजन विजयजी म सा „
9 साध्वी श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म सा „ 2

सघ भक्ति

उपरोक्त साधु-साध्वी वृन्द की वैय्यावच्च, सेवा सुश्रुषा एव विहार की व्यवस्था के अलावा उदयपुर, सुनाम एव हिण्डौन से सामूहिक रूप से पधारे हुए यात्री सघो की भक्ति का सौभाग्य तो प्राप्त हुआ ही, साथ ही व्यक्तिगत रूप मे पधारे हुए अनेको स्राधर्मियो की भक्ति का लाभ भी सघ को मिला है।

पर्यूषण पर्व के तत्काल पश्चात् खतरगच्छ सघाधीन आयोजित एक दिवसीय यात्रा के यात्रियों की सघ भक्ति भी जनता कालोनी स्थित मदिर पर दर्शनार्थ पधारने पर इस श्रीसघ द्वारा की गई।

सघ की स्थायी गतिविधिया

उपरोक्त विशेष उल्लेखनीय घटनाओ का दिग्दर्शन प्रस्तुत करने के पश्चात् अब मैं इस श्रीसघ की स्थायी प्रवृत्तियो एव कार्यकलापो का विवरण एव तदन्तर्गत आय-व्यय का लेखा-जोखा मोटे रूप मे प्रस्तुत कर रहा हू।

श्री सुमतिनाथ स्वामी का मन्दिर जयपुर

255 वर्षीय अति प्राचीन इस भव्य जिनालय की व्यवस्था यथावत् सुचारू रूप से संचालित होती रही। इस सीगे में इस वर्ष कुल 1,06, 772)15 की आय हुई जब कि व्यय 52,322) 76 रुपये का ही हुआ है। इसी राशि में देव-साधारण में नकद 14,614)12 की आय हुई और पूजन सामग्री पर 13,237)53 का व्यय हुआ है। शेष भेंटें सामग्री के रूप में प्राप्त होती रही है और इस प्रकार देव-द्रव्य का उपयोग किए बिना सेवा पूजन हेतु सामग्री उपलब्ध कराने की व्यवस्था होती रही है।

गत वर्ष श्री सुभाषचन्दजी मारोठ वाले से रंग-रोगन का आंशिक कार्य करवाया गया था लेकिन अब वयोवृद्ध कलाकार श्री भंवरलालजी की सेवायें प्राप्त हो गई है और वर्षों पूर्व हुए रंग-रोगन के जीर्ण-शीर्ण हो जाने से इनके जीर्णोद्धार का कार्य पुनः आरम्भ कर दिया गया है और जब तक सम्पूर्ण कार्य पूरा नही हो जाता यह कार्य निरन्तर चलता रहेगा। इस पर अब तक लगभग ढाई हजार की राशि व्यय हो चुकी है।

इसी प्रकार से जिनालय के ऊपर स्थित गुम्बज भी जीर्ण हो गए। गत वर्ष की बरसात मे तो मंदिरजी में सीधा ही पानी टपकने लगा जिससे भीतरी कार्य क्षतिग्रस्त होने लगे थे। यह कार्य भी हाथ में ले लिया गया है और रंग-मण्डप के गुम्बज पर कड़ा कराने का कार्य जारी है जिस पर अब तक लगभग पांच हजार की राशि व्यय हो चुकी है। परमपूज्य आचार्य श्रीमद्विजय मनोहरसूरीश्वरजी म. सा. की सद्प्रेरणा है कि ध्वज-दण्ड को और ऊपर उठाना आवश्यक है। इस बारे मे भी विचार विमर्श कर यथा समय शीघ्र ही निर्णय लिया जावेगा।

गत वर्ष के विवरण में भगवान श्री धर्मनाथ स्वामी की चलायमान प्रतिमाजी को कमलनुमा संगमरमर के स्टेंड पर स्थायी रूप से स्थापित करने का उल्लेख किया गया था। यह कार्य भी लगभग पूर्ण हो गया है और शुभ मुहुर्त मे स्थापना की जावेगी।

श्री रामेश्वरलाल सुनार के पास इस संघ की जो 3 किलो 100 ग्राम चांदी लगभग 14 वर्ष से दबी हुई थी और जिसका निपटारा नही हो पा रहा था, निरन्तर एव सतत् प्रयत्नो से यह विवाद भी समाप्त हो गया है। 3)100 कि. चादी प्राप्त कर ऊपर के देरासर में विराजित भगवान नेमीनाथ स्वामी, चन्दाप्रभुस्वामी की विशाल प्रतिमाओ सहित छः प्रतिमाजी के मुकुट कुण्डल बनवा लिए गए है।

फेरी में संगमरमर के पाटिये लगवाने का कार्य भी नितान्त आवश्यक हो रहा है और इसे भी शीघ्र ही सम्पन्न कराने का प्रयास किया जायेगा।

श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर, जनता कालोनी जयपुर

इस देरासर में सेवा पूजा का कार्य भी वर्ष भर सम्पन्न होता रहा है। दि. 1 अगस्त, 82 रविवार को 25वां वार्षिकोत्सव बहुत ही भव्य एव सुन्दर ढग से सम्पन्न हुआ। परमपूज्य आचार्य श्रीमद् विजय मनोहरसूरीश्वरजी म. सा. की निश्रा मे सम्पन्न हुए कार्यक्रम में नवगठित महिला मण्डल द्वारा पूजा पढ़ाने के आयोजन ने चार चांद लगा दिए एव पूजा में समा बध गया। पूज्य आचार्य भगवन्त का प्रवचन हुआ। पूजा पढ़ाने का लाभ श्राविका संघ द्वारा लिया गया तथा बाद में साधर्मी भक्ति का आयोजन सम्पन्न हुआ।

नव-निर्वाचित महासमिति द्वारा समस्त उप समितियो का पुनर्गठन किया गया है। महासमिति के सदस्य श्री शांतिकुमार सिंघी के सयोजकत्वमे इस देरासर की व्यवस्था, नव-निर्माण कार्यो मे

मार्गदर्शन एव देखरेख हेतु 15 सदस्यीय उप-समिति का गठन किया गया है। सदस्यो का विवरण पृथक से उद्धृत किया गया है।

जैसा कि पूर्व मे उल्लेख किया जाता रहा है कि इस क्षेत्र मे बढती हुई साधर्मी बन्धुओ की अभिवृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए यहा पर सुव्यवस्थित एव भव्य जिनालय का निर्माण आवश्यक हो गया है जिसमे उन्हें प्रभु पूजन और आराधना का सहज साधन सुलभ हो सके। इस बारे मे निरन्तर प्रयास होते रहे लेकिन योजना क्रियान्वित नही हो सकी थी।

परमपूज्य आचार्य श्रीमद् विजय मनोहर-सुरीश्वरजी महाराज साहब के जयपुर पदार्पण के साथ ही इस विषय मे भी गतिशीलता आई एव आपकी ही सद्प्रेरणा, निश्रा एव मार्गदर्शन मे देरासर निर्माण की रूपरेखा को अन्तिम रूप देकर कार्यारम्भ कर दिया गया है। श्रावण सुदी 8 को खाद-मुहूर्त सम्पन्न हुआ तथा भादवा बदी 1 बृहस्पतिवार को शुभ मुहुर्त मे शिला स्थापन का कार्य डा० भागचन्दजी छाजेड के कर कमलो से सम्पन्न हो गया है। श्री देवीचन्द जी गुलाब चन्दजी, वरकाणा वाले, सोमपुरा की देख-रेख मे निर्माण कार्य सम्पन्न होगा।

श्री जैन श्वे तपागच्छ सघ द्वारा जयपुर मे शताब्दियों पश्चात् जिन मन्दिर का नव-निर्माण कराया जा रहा है। योजना प्रतिष्ठापूर्ण एव महत्वाकांक्षी है जिसमे न केवल जयपुर जैन समाज का अपितु समस्त तपागच्छानुयायो का उदार एव हार्दिक सहयोग प्रार्थनीय है। इस अवसर पर महासमिति जयपुर जैन समाज के प्रत्येक भाई बहिनो से कर बद्ध प्रार्थना करती है कि इतिहास साक्षी है कि भव्यात्माओं ने व्यक्तिगत रूप से ही विशाल एव भव्य जिनालयो का निर्माण करा कर अपने द्रव्य एव जीवन को सार्थक किया है। यदि यह सम्भव नहीं भी हो सके तो भी जिस शहर और समाज मे निवास करते है वहाँ पर बनने वाले जिनालय म यथा शक्ति अधिक से अधिक तन मन धन से सहयोग कर अक्षय पुण्योपार्जन के भागीदार अवश्य बनें। न्यूनतम और अधिकतम एक मुश्त योगदान तो साभार स्वीकार होगा ही साथ ही प्रत्येक भविजन अपनी शक्तिनुसार योगदान कर सकें इस हेतु निम्न प्रकार योजना भी जारी की गई है –

(1) मंदिर जी के निर्माण की प्रथम चरण की योजना लगभग तीन लाख की बनाई गई है इसमे एक पैसे (प्रतिशत) की भागीदारी के 3001) रु० बनते है। जो कम से कम एक प्रतिशत के भागीदार बनना चाहें उन्हे सवप्रथम 601) एकमुश्त जमा करना है तथा अगस्त, 82 से आगामी 24 माहो मे एक सौ रुपया प्रति माह की दर मे दो साल में 2400) रुपय देन हैं जो एक मुश्त भी अथवा किश्तों में दिये जा सकेंगे।

(2) 1) रु० प्रतिदिन का योगदान एक रुपया प्रतिदिन की दर मे तीन साल मे 1111) रु० का योगदान करना है। यह राशि महावारी, छ माही अथवा एक वर्ष की 365) रु० प्रति वर्ष के अनुसार हर साल जमा कराते हुए तीन साल मे 1111) रु० का योगदान करना है। समस्त राशि एक मुश्त भी तत्काल प्रदान कर सकते हैं।

(3) इसमे कम योगदान करने वाले भी अपने नाम से रसीद कटवा कर अथवा गुप्त पेटी मे दान कर सकेंगे।

(4) समस्त राशि श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ, सघ, जयपुर की पेढी में जमा होगी और वही से सारा द्रव्य व्यय किया जावेगा।

(5) 1111) रु० या इससे अधिक राशि देने वालो के नाम शिलालेख पर अंकित किये जावेंगे।

महासमिति ने यह वृहद् कार्य "संघ-जयवन्त" के मूल आधार पर ही हाथ में लिया है और आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि शासन देव की कृपा एवं सभी के सतत् सहयोग से यह महत्वाकांक्षी कार्य शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण होगा। इसी का परिणाम है कि शिला-स्थापन मुहुर्त के अवसर पर ही लगभग 50 हजार के योगदान के आश्वासन प्राप्त हो गए।

इस जिनालय में भगवान श्री सीमन्धर स्वामी मूल नायक होगे तथा शिखरयुक्त मन्दिर निर्माण की योजना है। जयपुर में स्थित जिनालयों में अभी तक कोई भी जिनालय शिखरयुक्त नही है और इससे भी इसका महत्व और उपदेयता और बढ जाती है। प्रतिष्ठित भगवान सुपार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा जी भी वही पर रहेंगी।

गत वित्तीय वर्ष मे सभी सीगों को मिलाकर इस जिनालय के अन्तर्गत 2622)94 की आय हुई जबकि 7777)05 का व्यय हुआ है। पानी का कनेक्शन भी पृथक से ले लिया गया है।

श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर, बरखेडा

इस मन्दिर की व्यवस्था हेतु भी उप समिति का पुनर्गठन नव-निर्वाचित महासमिति द्वारा किया गया एव श्रीमान उमरावमलजी पालेचा के संयोजकत्व मे विगत मनोनीत सदस्यों को ही शामिल कर 11 सदस्यीय उपसिमित का गठन किया गया है। उप समिति की देखरेख में मन्दिर जी की व्यवस्था का कार्य सम्पन्न हो रहा है।

इस तीर्थान्तर्गत गत वित्तीय वर्ष में 12249)05 की आय हुई जिसमें मन्दिर जी में 2807)15, वार्षिक मेले के अन्तर्गत 8631)90 एवं 810,10 किराये की आमदनी विशेष उल्लेखनीय है। इसके मुकाबले में 14285) 82 का व्यय हुआ जिसमें 899)40 पूजन खर्च, 530)35 मन्दिर-जीर्णोद्धार, 1339) रु० वेतन, वरतनों की नई खरीद में 903)12, जीर्णोद्धार-साधारण सीगे से 903) 12 तथा वार्षिकोत्सव पर 9164)95 का व्यय उल्लेखनीय हुआ है।

परम्परागत रूप से फाल्गुन शुक्ला 12 रविवार, दिनांक 7 मार्च, 82 को वार्षिकोत्सव का आयोजन सानन्द सम्पन्न हुआ। इस वार की विशेपता यही थी कि पूर्व निश्चयानुसार बसों की एक ही चक्रानुसार व्यवस्था की गई एवं इससे यात्रियों को वहुत ही सुविधा एवं सन्तोष रहा।

जहां तक मन्दिरजी की मूल वेदी के दोष निवारण का कार्य है गत वित्तीय वर्ष में तो सोमपुरा की सेवाओ के अभाव मे यह कार्य सम्पन्न नही हो सका लेकिन अव श्री गिरधर भाई कालीदास की सेवायें प्राप्त हो गई है। चन्दलाई मन्दिरजी के कार्य पूर्ण होते ही यह कार्य भी हाथ मे लेने की भावना है और इससे यह विश्वास वनता है कि वर्षो का कार्याधीन कार्य शीघ्र ही पूर्ण हो जायेगा।

श्री शान्तिनाथ स्वामी का मन्दिर, चन्दलाई

इस मन्दिर की व्यवस्था का कार्य भी वर्ष भर सम्पन्न होता रहा। नव गठित उपसमिति के सयोजक श्री वलवन्तसिंहजी छजलानी को मनोनीत किया गया और उप समिति के सदस्यों का भी पुनर्गठन किया गया है।

इस मन्दिरजी के जीर्णोद्धार का कार्य तो श्री चिन्तामणीजी ढड्ढा के संयोजकत्व मे गत वर्ष ही पूर्ण हो गया था लेकिन मूल गम्भारे का काम सूयोग्य सोमपुरा की सेवाओ के अभाव में रुका हुआ था। अव यह कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया है। दोप पूर्ण एवं क्षतिग्रस्त गम्भारे के स्थान पर सम्पूर्ण मगमरमर का नया गम्भारा एवं वेदी का निर्माण किया जा रहा है और यह कार्य भी शीघ्र ही पूर्ण होने वाला है। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् शुभ मुहुर्त मे पुनः प्रतिष्ठा करवाई जावेगी। इस पर अनुमानित व्यय के

तखमीने के आधार पर 31000 रु० की राशि स्वीकृत की गई है और इसके पेट अभी तक लगभग 22,000) व्यय हो चुके हैं। जिम त्वरित गति से यह कार्य सम्पन्न कराया गया है उसके लिए श्री बलवन्तसिह जी छजलानी एव इस हेतु गठित उप समिति के समस्त सदस्यो की सेवाओ का उल्लेख करना महासमिति अपना कर्त्तव्य समझती है।

विगत बाढ से यहा के पुजारी श्री रामेश्वर भी प्रभावित हुए विना नही रहे थे। उन्हे 500) रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की गई है।

श्री वर्द्धमान आयम्बिलशाला

आयम्बिलशाला का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न होता रहा है। गत वित्तीय वर्ष मे इस सीगे मे भेंट, किराया एव व्याज से 21008)11 की आय हुई जबकि खर्चा 24045)32 का हुआ है। इसमे जो लगभग तीन हजार की टूट रही है उसका मूल कारण दो ओलीजी मे व्यय किया गया द्रव्य ओलीजी कराने वालो की तरफ से वित्तीय वर्ष की समाप्ति से पूर्व प्राप्त नहीं होना रहा। अब उनसे वह 3436)26 की धन राशि प्राप्त हो जाने से वस्तुत इस सीगे मे भी टूट नहीं रही है। स्थायी मिति कोष मे 3116) रुपये पृथक से प्राप्त हुए हैं।

गत वर्ष शेड निर्माण का उल्लेख किया गया था और यह कार्य पूर्ण रूपेण सम्पन्न हो चुका है। इस पर कुल व्यय 93,161)63 का हुआ। 1111) रुपए उपलब्ध कराने पर फोटो लगाने की जो योजना प्रारम्भ की गई थी उसके अतर्गत अभी तक 32219) रुपये प्राप्त हो चुके है तथा जो पुरानी जीर्ण शीर्ण टिन की चदरें थी उनमे से 60 चद्दरो की 75 रुपये प्रति चद्दर की दर से बिक्री करने से 4500) रुपये की आय हुई है। इस प्रकार कुल प्राप्तिया 36719 रुपए हुई हैं। अभी तक इस पेटे जो लगभग 57 हजार का द्रव्य भार है उसकी पूर्ति हेतु भी सतत प्रयत्न जारी है। 251) रुपये या इससे अधिक राशि देन वालो के नाम बोर्ड पर अंकित किये जावेंगे।

यहा पर फर्श बदलवाने की आवश्यकता भी अनुभव की जा रही है लेकिन अब यह काय साधनो की उपलब्धता पर ही हाथ मे लिया जावेगा। इस हेतु भी दानदाताओ का उदार सहयोग प्रार्थनीय है।

आयम्बिलशाला मे इमी के नाम मे गैस कनक्शन ले लिया गया है तथा अन्य उपकरण क्रय किये गये है।

साधारण खाता

सबसे अधिक द्रव्य साध्य इस सीगे के अन्तर्गत गत वित्तीय वर्ष मे 5८,897)46 का व्यय हुआ लेकिन सतत् प्रयत्नो एव आय के स्रोतो मे अभिवृद्धि से कुल प्राप्तिया 61351 9 की हुई जिससे यह सीगा भी टूट मे मुक्त रहा है। कर्मचारी वर्ग के वेतनो मे वृद्धि, चातुर्मासिक व्यवस्था वैय्यावच्छ एव साधर्मी सेवा के विशेष उल्लेखनीय खर्च रहे हैं।

गत वर्ष मणिभद्र उपकरण भण्डार की स्थापना का उल्लेख किया गया था। भण्डार मे (86८)5 की शुद्ध बचत हुई जो इसी सीगे मे समायोजित की गई है।

अभी हाल ही मे उपाश्रय मे सफेदी रग रोगन आदि का काय भी कराया गया है।

साधर्मी भक्ति

जैसा कि गत वर्ष के विवरण मे उल्लेख किया गया था कि साधर्मियो की सेवा हेतु अधिकाधिक द्रव्य अपेक्षित है। लेकिन प्राप्तिया उतनी उत्साहवर्धक नहीं होती है। इनके परिणाम

स्वरूप जितनी सहायता उपलब्ध करानी चाहिए उसमें मितव्ययिता एवं संकोच करना पड़ता है। गत वित्तीय वर्ष में इस हेतु कुल 3875)25 की आय ही हुई जब कि जरूरतमन्दों की नितान्त आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए 8733)26 का व्यय किया गया जिसमें भरण पोषण, शिक्षा एवं चिकित्सा में सहायता शामिल है। अतिरिक्त व्यय का समायोजन साधारण सीगे से किया गया है।

ज्ञान खाता

इस खाते मे कुल 11,300)39 की आय इस संघ को हुई तथा पूज्य आचार्य श्रीमद् विजय ह्रींकारसूरीश्वरजी मा० सा० के चातुर्मास काल मे गुरु पूजा निमित्त प्राप्त काफी बड़ी धन राशि उम्मेदपुर ट्रस्ट को भेजी गई। वेतन, नई पुस्तको की खरीद आदि पर 4072)29 का व्यय हुआ है। पूज्य आचार्य श्री ह्रींकारसूरीश्वरजी म. सा. की प्रेरणा से "श्री सकलचन्दजी गणिकृत अष्टादश अभिषेक, भक्तामर एवं उवसग्गहर महापूजन विधि सहित" नामक पुस्तक प्रकाशन का कार्य हाथ मे लिया गया और इसमें 2500 रुपये व्यय होने का अनुमान है। पुस्तक लगभग छप चुकी है और शीघ्र ही प्रकाशित कर दी जावेगी। इस पुस्तक के प्रकाशन में श्री धनरूपमल जी नागौरी का योगदान विशेष उल्लेखनीय रहा है।

जीवदया :

यद्यपि इस सीगे की आय-व्यय का समायोजन भी साधारण सीगे के अन्तर्गत होता है लेकिन गत वर्ष जयपुर मे आई भयंकर बाढ़ के कारण पीड़ितो की सहायतार्थ 6000) रुपये की राशि उदयपुर श्री संघ मे इस संघ को प्राप्त हुई तथा विभिन्न पूजाओं आदि के अवसर पर इस हेतु एकत्रित 2560)17 की आय को मिलाकर कुल 8560)17 की प्राप्तियां हुई। स्थायी रूप से प्रतिदिन यहां पर डाली जाने वाली ज्वार, विभिन्न गौशालाओं को विशेष सहायता के अतिरिक्त बरखेड़ा एवं शिवदासपुरा ग्राम में दो ट्रक कड़वी (चारा) का वितरण पशुओं के लिए कराया गया है। इस प्रकार गत वित्तीय वर्ष मे जीवदया हेतु 8094)76 का व्यय किया गया है।

प्रशिक्षण :

धार्मिक पाठशाला : सायंकालीन पाठशाला की व्यवस्था श्रीमती चन्दादेवी प्राध्यापिका के अन्तर्गत चलती रही लेकिन पूर्ववत् छात्र-छात्राओं की धार्मिक प्रशिक्षण के प्रति अभिरुचि में अभाव के कारण इसका जितना उपयोग होना चाहिये वह नही हो रहा है। सभी बन्धुओं से निवेदन है कि अपने बालकों को इस पाठशाला में भेज कर अधिकाधिक उपयोग करें तब ही इस व्यवस्था की सार्थकता है।

उद्योगशाला : उद्योगशाला में सिलाई बुनाई प्रशिक्षण का कार्य श्रीमती राजकुमारी प्रशिक्षिका की देखरेख में वर्ष भर चलता रहा है और प्रशिक्षणार्थियों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई है।

पुस्तकालय, वाचनालय एवं ज्ञान भण्डार : इनका कार्य भी वर्ष भर सुचारू रूप से चलता रहा है और नई पुस्तकें एवं दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों के कारण इसके प्रति सभी की अभिरुचि बढती जा रही है। विशेष कर बालकों का लगाव इस ओर अधिक हो जाने से शीघ्र ही नई पुस्तकों की खरीद की जावेगी।

श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल :

श्री आत्मानन्द जैन सेवक मण्डल की गतिविधियाँ भी वर्ष भर सक्रिय रहीं एवं न केवल इस संघाधीन हुए आयोजनों में अपितु अन्य संघों के कार्यो मे भी इस मण्डल के सदस्यों ने सक्रिय योगदान किया है।

गत चातुर्मास काल मे मण्डल द्वारा आयोजित कार्यक्रम, दीपमालिका झांकियां आदि जन-जन के आकर्षण के केन्द्र रहे।

श्री श्राविका संघ

पुनर्गठित श्राविका संघ के अधीन वर्षभर सक्रियता बनी रही। साध्वी वृन्द के जयपुर आगमन पर उनकी सेवा सुश्रूषा, वैय्यावच्छ, विहार आदि मे तो इनका योगदान रहा ही है, आयम्बिलशाला की देखरेख सहित विभिन्न पूजायें पढाने में आर्थिक सहयोग प्राप्त होता रहा है। इतना द्रव्य भार उठाने के पश्चात् भी गत वित्तीय वर्ष मे 3500) की और वृद्धि कर अब इनके खाते मे 17500) रु की राशि इस संघ मे जमा है।

यह विशेष उल्लेखनीय है कि श्राविका संघ के अन्तर्गत ही दि - 19-7-82 को श्री घनस्यमलजी नागौरी के सद्प्रयत्नों से विचिवन् महिला मण्डल का गठन किया गया है जिसने पूजन पढाने, धार्मिक अभ्यास, स्वाध्याय, संगीत, नृत्यादि की विभिन्न प्रवृत्तियां प्रारंभ कर एक बहुत बडी कमी की पूर्ति कर दी है।

श्री मणीभद्र उपकरण भण्डार

महासमिति के नव-निर्वाचन के पश्चात् भी इस भण्डार की व्यवस्था का दायित्व श्री चनमलजी ढड्ढा के ही सुपुर्द रखा गया है। इस भण्डार की स्थापना के समय मणिभद्र कोष मे जो चार हजार की पूंजी उपलब्ध कराई गई थी वह सम्पूर्ण रूप से वापस इस कोष को प्राप्त हो गई है। भण्डार को शुद्ध बचत 6866)05 की हुई जिसका समायोजन साधारण खाते में किया गया है।

श्री मणिभद्र

श्री मणिभद्र इस मन्य का मुख पत्र है और विगत सम्पादक मण्डलों के प्रयत्नो से जहा इसके स्तर एवं आकार में उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई है वहा विज्ञापनदाताओं की अभिरुचि एवं उदार सहयोग से आय मे भी वृद्धि हुई है। गत वर्ष के 23वें अंक के प्रकाशन पर 6978)80 का वास्तविक व्यय हुआ जब कि विज्ञापनों से वित्तीय वर्ष की समाप्ति तक 7250)रु की आय हो चुकी थी। लगभग ढाई हजार की वसूली शेष थी जिसके पेटे अभी तक 1104) रु और प्राप्त हो चुके हैं। इस प्रकार गत अंक के प्रकाशन मे ढाई हजार की बचत का लक्ष्य लगभग प्राप्त हो जायेगा।

इस वर्ष भी निरन्तर बढ रहे प्रकाशन व्यय के उपरान्त भी विज्ञापन की दरें वही रखी गई और इस वर्ष भी गत वर्ष से अधिक बचत होना सम्भावित है।

आर्थिक स्थिति

संस्था की आर्थिक स्थिति पूर्ववत् सुदृढ ही नहीं अपितु उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर है। सम्पूर्ण आय व्यय विगत वर्ष 2 40,406) 53 के मुकाबले प्रस्तुत वित्तीय वर्ष 1981-82 मे 2,52, 450) 95 हुआ है। चिट्ठा भी 4,01, 456) 19 के मुकाबले 4,12,411) 39 का हो गया है। आयम्बिलशाला में शेड निर्माण के लिये व्यय किए गये 93000) रु के लिये साधारण आदि खातों से लिए गये ऋण के कारण जहा स्थायी जमाखाता में 2,62,397)95 की राशि के स्थान पर वित्तीय वर्ष समाप्ति के दिन 2,39, 420)50 की राशि जमा थी लेकिन इसके साथ साथ बचत खाते मे विगत वर्ष की 67,682)21 रु० की बचत खाते में जमा राशि के स्थान पर रु० 1 15,115)99 की राशि जमा थी। इस राशि को भी स्थायी जमा खाते मे जमा कराया जा सकता था लेकिन महासमिति की ऐसी मान्यता है कि संस्था के कार्यों को अधिक से अधिक गतिशील रखने, जीर्णोद्धार, नव-निर्माण एवं स्थायी प्रकृति की चल सम्पत्तियों में विनियोजन करना अधिक हितकर एवं उपयोगी है। संघ के अन्तर्गत विभिन्न कार्य चल रहे हैं और भविष्य की यो-

नाएं भी कार्य रूप में परिणित करना है जिनके लिए यह धनराशि नगण्य सिद्ध होगी। अतः दानदाताओं का उदार सहयोग एवं त्वरित भुगतान सादर प्रार्थनीय है।

फिर भी अभी ज्ञानखाता में दस हजार रुपया स्थायी जमा खाता (एफ डी) में जमा कराये गए हैं।

अन्य संस्थाओं को योगदान

अन्य संस्थाओ को योगदान हेतु अनेकों प्रार्थना पत्र प्राप्त होते रहे लेकिन इस संघ के अधीन ही चल रहे विभिन्न कार्यों के कारण विगत वर्ष में अधिक राशि उपलब्ध नहीं कराई जा सकी। अलौकिक पार्श्वनाथ तीर्थ, हसमपुरा के परिकर निर्माण हेतु इस संस्था के योगदान की आठ हजार की राशि में से पांच हजार रुपये उपलब्ध करा दिए गए है। शेष राशि परिकर का कार्य पूर्ण होने पर प्रेषित की जावेगी।

आडिटर

नव-निर्वाचित महासमिति ने पूर्ववत् श्री राजेन्द्रकुमारजी चतर, सी ए को ही संस्था का आडिटर नियुक्त किया और उनके द्वारा गत वर्ष के आय-व्यय का अंकेक्षण कर आय-व्यय विवरण आय-कर विभाग को प्रेषित कर दिया गया है। उनके द्वारा अंकित एवं अकेक्षित आय-व्यय खाता एवं चिट्ठा इसके साथ प्रकाशित किया जा रहा है। मुख्य रूप से आपके द्वारा विधान में संशोधन करने की आवश्यकता प्रतिपादित की जा रही है। यह कार्य भी अब शीघ्र ही पूर्ण करने का प्रयास किया जावेगा। इस अवसर पर महासमिति उनकी निःस्वार्थ सेवाओं के प्रति अपना आभार व्यक्त करती है।

कर्मचारी वर्ग

संघ के समस्त कर्मचारी वर्ग का कार्य वर्ष भर संतोषजनक रहा है और उन्हीं की मेहनत, लगन एवं निष्ठा से दैनिक कार्य-कलाप सुचारु रूप से सम्पन्न होते रहे है।

निरन्तर बढ़ रही मंहगाई के कारण जीविकोपार्जन में आने वाली कठिनाइयों से महासमिति परिचित है और साधनानुसार उनकी वेतन वृद्धि भी शीघ्र ही की जाएगी। गत वर्ष भी उनके हित साधन के प्रति महासमिति सजग रही थी।

महासमिति :

नव-निर्वाचित महासमिति सर्व प्रथम विगत महासमिति के प्रति हार्दिक आभार एवं कृतज्ञता प्रगट करना चाहेगी जिन्होने अपने कार्यकाल में इस संघ की अमूल्य सेवा कर न केवल सघ के कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित किया साथ ही इसकी अभिवृद्धि में अपना अपूर्व योगदान किया है।

साथ ही वर्तमान महासमिति संघ के समस्त सदस्यों के प्रति आभार प्रकट करती है जिन्होंने नव-निर्वाचित सदस्यों के प्रति विश्वास प्रगट कर उन्हें सेवा का अवसर प्रदान किया हैं। महासमिति अपनी पूर्ण निष्ठा, एकता एवं लगन से संघ द्वारा सौंपे गए उत्तरदायित्व को पूर्ण करने का प्रयत्न करेगी लेकिन सफलता समस्त श्रीसंघ के सजग, सक्रिय एवं उदार सहयोग और मार्गदर्शन पर ही निर्भर है।

धन्यवाद ज्ञापन

वैसे तो वर्ष भर की गतिविधियो के संचालन में ज्ञात अज्ञातरूप से, नामोल्लेख किए बिना, प्राप्त सहयोग के लिए समस्त श्रीसंघ के प्रति महासमिति अपना हार्दिक धन्यवाद एवं कृतज्ञता ज्ञापित करती है। साथ ही श्री गोपीचन्दजी चोरडिया द्वारा ध्वनि प्रसारण यंत्रो की, श्रीलक्ष्मणसिंह जी मारु द्वारा विद्युत व्यवस्था एवं श्री जैन नवयुवक मण्डल द्वारा महावीर जन्मोत्सव सहित विभिन्न आयोजनों मे किए गए कार्य एवं सहयोग के लिए विशेष रूप से धन्यवाद प्रेषित करती है।

इन्ही शब्दों के साथ मैं वर्ष संम्वत् 2038–39 क्रमशः सन् 1981–82 का यह वार्षिक विवरण एवं आय-व्यय का लेखा-जोखा, कतिपय उल्लेखनीय घटनाओं के उल्लेख सहित आपकी सेवा मे सादर प्रस्तुत करता हूं।

जय वीरम्

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

ग्यारहवीं निर्वाचित महासमिति

(सं० २०३९ से २०४१)

१	श्री हीराचन्द चौधरी	अध्यक्ष
२	,, कपिलभाई के शाह	उपाध्यक्ष
३	,, मोतीलाल भडकतिया	संघ मन्त्री
४	,, जावन्तराज राठौड	संघ मन्त्री
५	,, शिखरचन्द पालावत	मन्दिर मन्त्री
६	,, रणजीतसिंह भण्डारी	उपाश्रय मन्त्री
७	,, सुभाषचन्द छजलानी	साधर्मिक शाला मन्त्री
८	,, हरिश्चन्द्र मेहता	शिक्षण मन्त्री
९	,, आर० सी० शाह	हिसाब निरीक्षक
१०	,, दानसिंह कर्णावट	भण्डाराध्यक्ष
११	,, जसवन्तमल सांड	सदस्य
१२	,, उमरावमल पालेचा	,,
१३	,, तरसेम कुमार जैन	,,
१४	,, राजमल सिंघी	,,
१५	,, डा० भागचन्द छाजेड	,,
१६	,, विमलकान्त देसाई	,,
१७	,, जतनमल ढड्ढा	,,
१८	,, मोतीलाल कटारिया	,,
१९	,, नरेन्द्र कुमार कोचर	,,
२०	,, शान्ति कुमार सिंघी	,,
२१	,, बलवन्तसिंह छजलानी	,,
२२	,, राकेश कुमार मोहनोत	,,
२३	,, देवेन्द्र कुमार मेहता	,,
२४	,, सुभाषचन्द छाजेड	,,
२५	,, रिक्त	,,

श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, जयपुर

महासमिति द्वारा नियुक्त विभिन्न उप समितियों के सदस्यों की नामावली

श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर, वरखेड़ा

१.	श्री उमरावल पालेचा	संयोजक
२.	,, किस्तूरमल शाह	सदस्य
३.	,, कपिलभाई शाह	,,
४.	,, हीराचन्द वैद	,,
५.	,, सरदारमल लूनावत	,,
६.	,, त्रिलोकचन्द कोचर	,,
७.	,, चिन्तामणि ढड्ढा	,,
८.	,, दानसिंह कर्णावट	,,
९.	,, शिखरचन्द कोचर	,,
१०.	,, शान्तिचन्द डागा	,,
११.	,, ज्ञानचन्द डुंकलिया	स्थानीय व्यवस्थापक

श्री शान्तिनाथ स्वामी का मन्दिर, चन्दलाई

१.	श्री बलवन्तसिंह छजलानी	संयोजक
२.	,, कपिल भाई के शाह	सदस्य
३.	,, रणजीतसिंह भण्डारी	,,
४.	,, ज्ञानचन्द भण्डारी	,,
५	,, शान्तिकुमार सिंघी	,,
६.	,, राकेश कुमार मोहनोत	,,
७.	,, विमलकान्त देसाई	,,

श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर, जनता कालोनी जयपुर

१.	श्री शान्तिकुमार सिंघी	संयोजक
२	, हीराचन्द वैद	सदस्य
३.	,, डा० भागचन्द छाजेड़	,,
४.	,, भागचन्द छाजेड़	,,
५.	,, भास्कर भाई चौधरी	,,
६.	,, घीसूलाल मेहता	,,
७.	,, शिखरचन्द पालावत	,,
८.	,, श्रीचन्द डागा	,,
९.	,, गणपतसिंह कर्णावट	,,
१०.	,, चिन्तामणी ढड्ढा	,,
११.	,, मनोहरमल लूनावत	,,
१२.	,, राकेश कुमार मोहनोत	,,
१२.	,, बलवन्तसिंह छजलानी	,,
१४.	,, जसवन्तमल सांड	,,
१५.	,, राजमल सिंघी	,,

श्री वर्धमान आयम्बिल शाला की स्थायी मितियां

१-४-८१ से ३१-३-८२ तक

१	श्री कान्तीचन्दजी विजयचन्दजी डागा	५०१)
२	श्री वल्लभ एजेन्सीज	५०१)
३	स्व० स्वरूपचन्दजी मेहता के श्रेयार्थ हस्ते श्री ज्ञानचन्दजी भण्डारी	१५१)
४	स्व० श्री मोहनलालजी दोशी	१५१)
५	स्व० श्री श्रीनारायणजी जैन मार्फत नेमीचन्दजी जैन वहतेड	१५१)
६	स्व० श्री हस्तीमलजी सुपुत्र श्री केशरीमलजी के श्रेयार्थ हस्ते के० एम० जैन	१५१)
७	श्री माणिकलाल केशवलाल मणीयार सेघवा (म०प्र०) हस्ते कान्तीलाल एच शाह	१५१)
८	स्व० तारावहन कसुम्बावाई केशवलाल वोगानी राजकोट	१५१)
९	श्री रेवचन्दजी जैन	१५१)
१०	श्री मणिलाल मोहनलाल जामनगर	१५१)
११	श्री ऊगमराजजी जैन	१५१)
१२	श्री कुन्दनलालजी जैन पल्लीवाल	१५१)
१२	श्री दलीपसिंहजी जैन	१५१)
१३	श्री महावीरचन्दजी मेहता	१५१)
१५	श्रीमती गुलाबदेवी जैन (श्रीमाल) वहतेड वाले	१५१)
१६	सुश्री जयावहन मगनलाल कोरडिया अमरेली (गुजरात)	१५१)

□

आयम्बिल शाला नव-निर्माण में सहयोगकर्त्ता

(जून १९८२ तक)

फोटो	भेंटकर्त्ता	राशि
१. स्व० लाला पदमचन्दजी जैन	उनकी धर्म पत्नि इन्द्रकुमारी डागा	११११)
२. स्व० बाबूलालजी जैन	उनके परिवार के सदस्यगण	११११)
३. स्व० लाला आसानन्दजी भंसाली	उनके परिवार के सदस्यगण	११११)
४. स्व० मंगलचन्दजी छगनाजी	मंगलचन्द ग्रुप	११११)
५. श्रीमती रतन बहन	मंगलचन्द ग्रुप	११११)
६. स्व० श्रीमती अनोपदेवी चौरड़िया	श्री गोपीचंदजी चोरडिया एवं परिवार के सदस्यगण	११११)
७. स्व० श्रीमती कान्ता बहन चन्दूलाल शाह	श्री प्रमुखभाई एवं रमेशभाई सी शेठ	११११)
८. स्व० श्रीमती सूरजकंवर कर्णावट	श्री फतेहसिंहजी कर्णावट एवं परिवार के सदस्यगण	११११)
९. श्री फतेहसिंहजी कर्णावट	समस्त कर्णावट परिवार की तरफ से	११११)
१०. स्व० श्रीमती सिरहकवरबाई शाह	श्री नथमलजी शाह एवं समस्त परिवार	११११)
११ स्व० श्रीमती जड़ावकंवर पोकरना	सुपुत्र श्री सोहनराज पोकरना जैतारण	११११)
१२. श्रीमती बसन्तकला सुराना	श्री कन्हैयालालजी सुराना एवं परिवार	११११)
१३. श्री कन्हैयालालजी सुराना	सुपुत्र जगतसिंह सुराना एवं परिवार	११११)
१४ श्री नोरतनमलजी ढड्ढा	श्री विजयसिंह ढड्ढा	११११)
१५ स्व० श्री केशवलालजी	सुपुत्र कपिलभाई एवं समस्त परिवार	११११)
१६. श्रीमती तीजोबाई उम्मेदमल चौहान	चौहान परिवार की ओर से	११११)
१७. स्व० सेठ कान्तीलाल कस्तूरचन्द शाह	श्रीमती हीराबहन के शाह एवं उनके सुपुत्रों द्वारा	११११)
१८. स्व० श्री भोगीलालजी शाह	मातु श्री, पसीबहन एव समस्त परिवार	११११)
१९. श्री कुशलराजजी सिंघवी (मेड़ता)	श्रीमती कमला सिंघवी धर्मपत्नि एवं श्री मदनराजजी सिंघवी एडवोकेट	११११)
२०. स्व० श्री मोहनलालजी दोशी	श्रीमती तेजकुवर दोशी एवं समस्त परिवार	११११)
२१. स्व० श्री श्रीलालजी मेहता जैतारन	श्रीपन्नालाल-मदनलाल-रतनलाल मेहता आम्बूर	११११)
२२. श्री कर्मचन्दजी मूलचन्दजी बाफना	श्रीमती पानाबाई धर्म पत्नि कर्मचन्दजी बाफना सादडी	११११)
२३. स्व० श्रीमती भंवरदेवी वेद	श्री हीराचन्द-प्रेमचन्द-मोतीचन्द-माणकचन्द एवं परिवार के सदस्य	११११)
२४. श्रीमती इन्द्रदेवी डागा	डागा परिवार	११११)
२५. श्रीमती तेजू बहन	श्री जयन्तीलाल शाह	११११)
२६. श्रीमती सोहन कंवर	श्री सोहनराजजी पोरवाल	११११)
२७.	मार्फत तरसेमकुमारजी	११११)
१८.	श्रीमती मंजुला बहिन	११११)
२९. स्व० श्री बी० आर० शाह	श्री रमेश एवं सतीश शाह	११११)

CHILD AND THE CARE

If a child lives with critism, he learns to condemn,
If a child lives with hostility, he learns to fight,
If a child lives with ridicule, he learns to be shy,
If a child lives with shame, he learns to feel guilty,
If a child lives with tolerance, he learns to be patient,
If a chiid lives with encouragement, he learns confidence,
If a child lives with praise, he learns to appreciate,
If a child lives with fairness, he learns Justice,
If a child lives with security, he learns to have faith,
If a child lives with approval, he learns to like himself,
If a child lives with acceptance and friendship,
he learns to find love in the work

(From a Doctor's Diary)
H C Mehta

निन्दापूर्ण वातावरण मे, बच्चा आलोचना करना सीखता है,
विग्रहपूर्ण वातावरण मे, बच्चा लडाकू एव अपराधी बनता है,
अव्हासपूर्ण वातावरण उसको शर्मिला बनाता है,
लज्जापूर्ण वातावरण से उसमे अपराधवृति का जन्म होता है।
सहिष्णुता पूर्ण वातावरण में वह धैर्यवान बनता है,
वातावरण उत्साह वधक हो तो बच्चा आत्मविश्वासी बनता है,
प्रशसा पूर्ण वातावरण में बच्चा दयालु प्रवृति का बनता है,
औचित्य पूण वातावरण मे बच्चा न्यायप्रिय बनता है,
सुरक्षा पूर्ण वातावरण से उसका निष्ठापूर्ण व्यक्तित्व बनता है,
अनुज्ञा पूर्ण वातावरण से बच्चा स्वय को पसन्द करता है,
स्वीकृति एव मित्रता युक्त वातावरण मे, वह समस्त विश्व को
प्यार करने की प्रेरणा पाता है।

अनुवादक—**महिपाल मेहता**

खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमतु मे,

मित्ती मे सव्वा भुएसु, वेर मज्झन केणई ॥१॥

पर्वाधिराज पर्युषण महापर्व

के

पुनीत अवसर पर सबसे हमारी

क्षमापना

शिव मस्तु सर्व जगत, परहित निरता भवतु भूतगणा,

दोषा प्रयान्तु नाश, सर्वत्र सुखी भवंतु लोका. ॥१॥

यही

शुभ—कामना

लुणावत ब्रादर्स

जयपुर

Phone 64495, 61585, 64542